॥ श्रीविचारसागर ॥

महात्मा श्रीनिश्चलदासजी कृत

'श्रीविचारसागर'

का

पद्यभाग

प्रकाशक—

श्रीवेदान्तप्रचार मण्डल काशी।

संस्थापकः—

श्री स्वामी मनोहरदासजी महाराज

वक्तव्य

श्रीदादू संप्रदाय के रत्न श्री निश्चलदासजी द्वारा रचित "श्री विचारसागर" ग्रंथ की उपकारता वेदान्त प्रेमियों में प्रसिद्ध ही है। इसका गद्य भाग आधुनिक शैली से खड़ी बोली में सरल बनाकर दर्पणवत् "श्री विचारसागर दर्पण" नामसे श्रीवेदान्त–प्रचार मण्डल अजमेर के द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसका क्रम कुछ स्वतन्त्र होने के कारण इसमें दोहा चौपाई आदि मूल भाग को स्थान नहीं दिया जा सका है। मूल भाग रहित ग्रन्थ के कण्ठस्थ करनेमें कठिनता का अनुभव करके श्री वेदान्त–प्रचार–मन्डल काशी की तरफ से केवल मूलमात्र प्रचारार्थ छपाया गया है।

आशा है जिज्ञासु समाज इस अद्वितीय वेदान्त रत्न के नित्यप्रति पाठ द्वारा वेदान्त के पदपदार्थों को कण्ठस्थ कर वेदान्त सिद्धान्त को सम्यक् अवगत करने में समर्थ हो सकेगा।

स्वामी मनोहरदास

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सवको सन्मति दे भगवान॥
रम रहा है सोई राम, सत् चित् आनन्द तूही राम।
मन बुद्धि नहीं मेरे नाम, नहीं इन्द्रिय नहीं हाड़ व चाम॥
इन सबका मैं साक्षी राम, अज अविनाशी सव जगधाम।
मैं ममता गई मिटे सबनाम, तू मैं वह का वहाँ क्या काम॥
ना मैं मैं ना तू तू रास, मैं ही मैं या तूही राम।
सकल उपाधि छोड़ी राम, तू हो मैं मैं तू ही राम॥

२ पदार्थ का ज्ञान होय सो युंजान योगी है और जिसे जाको सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत

होय सो युक्त योगी है

वेदान्त का सार

*** इन्दव छन्द ***

एक अखण्डित ब्रह्म असङ्ग, अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं।
मूल–अज्ञान न सूछम थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस विस्व-स्वरूप न जामैं।
भोग न जोग न बन्ध न मोच्छ, नहिं कछु वामैं रु है सब वामैं॥

जाग्रत मैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
ज्यूं सुपने-महिं भोग्य न भोग, तऊँ इक चित्र विचित्र जन्यो है॥
लीन सुषुपति मैं मति होतहि, भेद भगै इक रूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथ-मात्र सु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है॥

*** सवैया छन्द ***

जाके हिये ज्ञान–उजियारो, तम अंधियारो खरो विनास।
सदा असंग एक रस आतम, ब्रह्म-रूप सो स्वयंप्रकास॥
ना कछु भयो न है नहीं ह्वै है, जगत मनोरथ मात्र विलास।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चहित, ज्यूँ ज्ञानी के कोउ न आस॥

देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहै रु लेत न स्वाद।
सूंघि परसि परसै न न सूंघै, बैन न बोलै करै विवाद॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद।
सब कछु भोगै कछु नहिं भोगै, सिष लखि यह अद्भुत संवाद॥

इसका अभीप्राय कहते हैं :—

निज विषयन में इन्द्रिय बर्तें, तिनतै मेरो नाहीं सङ्ग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साच्छी कूटस्थ असङ्ग॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, आतम लगै न रंचक रङ्ग।
यह निश्चय ज्ञानी को जातैं, कर्त्ता दीखै करै न अङ्ग!॥

युक्त योगी कृत वेद प्रबल है। और युंजान योगी कृत

इन शास्त्रकारोंको सर्वज्ञता योग माहात्म्यसे
भई है इससे ये शास्त्र कर्ता युंजान योगी हुये हैं
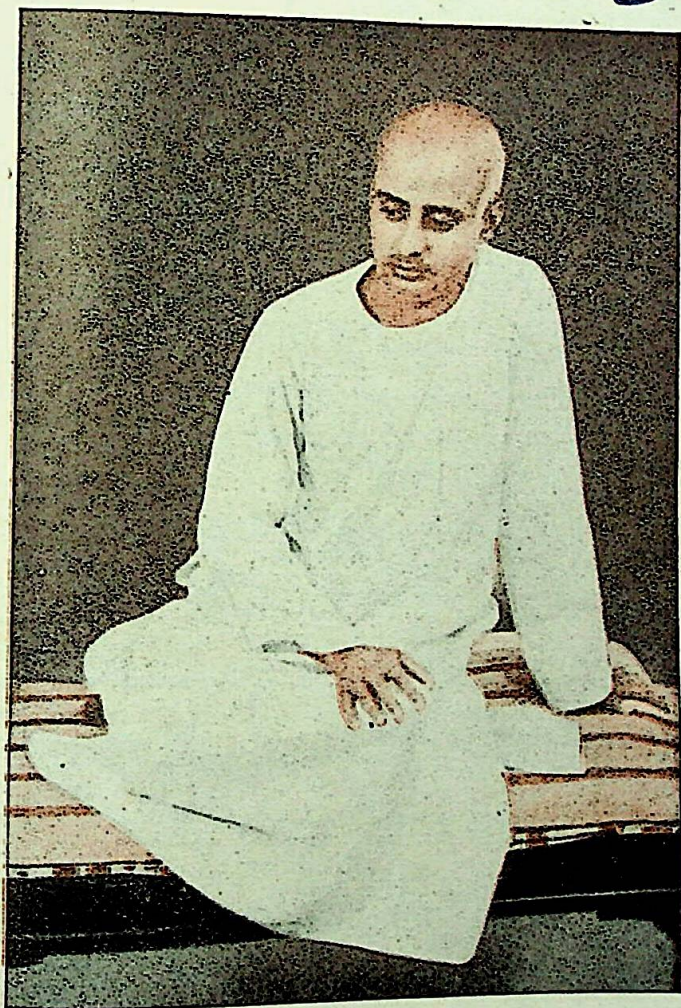
* श्री स्वामी मनोहरदासजी महाराज *

और ईश्वरको सर्वज्ञता स्वभाविक है याते
युक्त योगी है। जिसको चिंतवन करनेसे

२ पदार्थ का ज्ञान होय सो युंजान योगी है और जिसे जाको सर्वदा एकरस सारे पदार्थ अपरोक्ष प्रतीत

होय सो यु-क्त योगी है

वेदान्त का सार

* इन्दव छन्द *

एक अखण्डित ब्रह्म असङ्ग, अजन्म अदृस्य अरूप अनामैं।
मूल-अज्ञान न सूछम थूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस विस्व-स्वरूप न जामैं।
भोग न जोग न वन्ध न मोक्ष, नहिं कछु वामैं रु है सब वामैं॥
जाग्रत मैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सब बुद्धि विलास बन्यो है।
ज्यूं सुपने-महिं भोग्य न भोग, तऊँ इक चित्र विचित्र जन्यो है॥
लीन सुषूपति मैं मति होतहि, भेद भगै इक रूप सुन्यो है।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथ-मात्र सु, निश्चल बुद्धि प्रकाश भन्यो है॥

* सवैया छन्द *

जाके हिये ज्ञान-उजियारो, तम अंधियारो खरो विनास।
सदा असंग एक रस आतम, ब्रह्म-रूप सो स्वयंप्रकास॥
ना कछु भयो न है नहीं ह्वै है, जगत मनोरथ मात्र विलास।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चहित, ज्यूँ ज्ञानी के कोउ न आस॥
देखै सुनै न सुनै न देखै, सब रस गहै रु लेत न स्वाद।
सूंघि परसि परसै न न सूंघै, बैन न बोलै करै विवाद॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद।
सब कछु भोगै कछु नहिं भोगै, सिष लखि यह अद्भुत संवाद॥

इसका अभीप्राय कहते हैं :—

निज विषयन में इन्द्रिय बर्तैं, तिनतै मेरो नाहीं सङ्ग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असङ्ग॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, आतम लगै न रंचक रङ्ग।
यह निश्चय ज्ञानी को जातैं, कर्त्ता दीखै करै न अङ्ग !॥

युक्त योगी कृत वेद प्रवल है। और युंजान योगी कृत शास्त्र वचन दुर्वल है जी
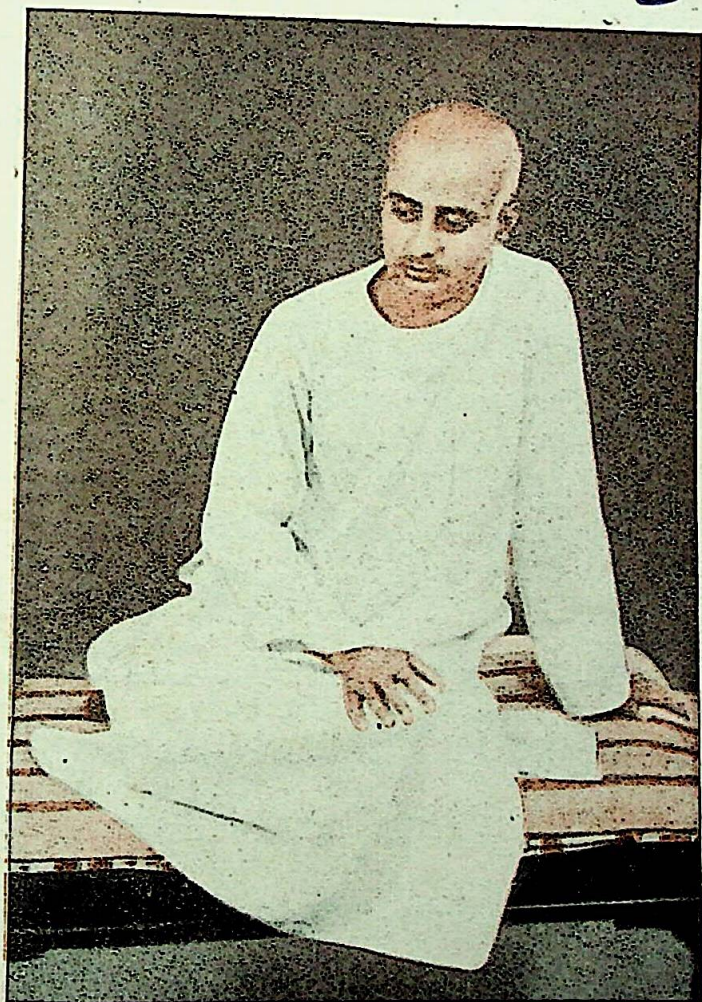
इन शास्त्रकारौंको सर्वज्ञता योग माहात्म्यसे भई है इससे ये शास्त्र कर्ता युंजान योगी हुये हैं

* श्री स्वामी मनोहरदासजी महाराज *

और ईश्वरको सर्वज्ञता स्वभाविक है याते युक्त योगी है। जिसको चिंतवन करनेसे

।। नास्तिक के षट् भेद ।।

माध्यामिक १ योगाचार २ सौत्रांतिक ३ वैभाषिक ४ चार्वाक ५ दिगंबर ६ ये छहे वेद नहीं मानते बिलक्षण सिद्धान्त है मध्यामिक शून्य बादी है। योगाचार के मत मे सारे पदार्थ बिज्ञान से भिन्न नहीं बिज्ञान ही तत्त्व है और सौत्रांतिक मत मे अनुमान प्रमाण के बिषय वाह्य पदार्थ है प्रत्यक्ष नहीं और स्थिर नही सारे पदार्थ क्षणिक है। वैभाषिक मत मे बाह्य पदार्थ क्षणिक तो है परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण के बिषय है इतना भेद है। चार्वाक मत मे पदार्थ क्षणिक नहीं परन्तु तिन के मत मे देह ही आत्मा है दिगंबर देह आत्मा नहीं है देह से भिन्न आत्मा है परन्तु जितना देह का परिमाण होता है उतना ही आत्मा का परिमाण है उत्तरमिमांसा बिना सारे [illegible] जिज्ञासु को है यह। सांख्य कर्ता कपिल मतं अनि का कर्ता पतंजलि। न्याय का गौतम। [illegible] वैशेषि. क का कर्ता कणाद पूर्वमीमांसा जैमिन। उत्तर मीमां सा के व्यास कर्ता है

श्रीविचारसागर

का

पद्यभाग

* प्रथमस्तरंगः *

॥ अनुबंध-सामान्य-निरूपणम् ॥

॥ वस्तुनिर्देशरूप मंगल ॥

❀ दोहा ❀

जो सुख नित्य प्रकाश विभु, नाम रूप आधार।
मति न लखै जिहिं मति लखै, सो मैं शुद्ध अपार॥ १ ॥

अब्धि अपार स्वरूप मम, लहरी विष्णु महेस।
विधि रवि चंदा वरुण यम, शक्ति धनेश गनेस ॥२॥

जा कृपालु सर्वज्ञको हिय धारत मुनि ध्यान॥
ताको होत उपाधिते, मोमें मिथ्या भान॥ ३ ॥

३ गीता

वेदान्त के प्रस्थानत्रय १ ब्रह्मसूत्र २ उपनिषद् ३ गीता हैं

ह्वै जिहिं जाने बिन जगत मनहु जेवरी सांप।
नशै भुजग जग जिहिं लहै, सोऽहं आपै आप ॥ ४ ॥
बोध चाहि जाको सुकृति, भजत राम निष्काम।
सो मेरो है आतमा, काकूँ करूँ प्रणाम ॥ ५ ॥

ग्रंथ महिमा

❀ दोहा ❀

भर्यो वेद सिद्धांत जल, जामैं अति गंभीर।
अस विचार सागर कहूँ, पेखि मुदित ह्वै धीर ॥ ६ ॥
सूत्र भाष्य वार्तिक प्रभृति, ग्रंथ बहुत सुरबानि।
तथापि मैं 'भाषा करूँ लखि मतिमंद अजानि ॥ ७ ॥
कविजनकृत भाषा बहुत, ग्रंथ जगत विख्यात्।
बिन विचारसागर लखै नहिं संदेह नशात् ॥ ८ ॥

अनुबंधनाम

❀ चौपाई ❀

नहिं अनुबंध पिछानै जौलौं, ह्वै न प्रवृत्त सुघर नर तौलौं।
जानि जिनै यह सुनै प्रबंधा, कहूँ व याते ते अनुबंधा ॥ ९ ॥

❀ सोरठा ❀

अधिकारी संबंध, विषय प्रयोजन मेलि चव।
कहत सुकवि अनुबंध, तिनमैं अधिकारी सुनहु ॥ १० ॥

अधिकारी वर्णन

❀ दोहा ❀

मल विक्षेप जाके नहीं, किंतु एक अज्ञान।
ह्वै चव साधन सहित नर, सो अधिकृत मतिमान ॥ ११ ॥

च्यारिसाधन वर्णन

❀ दोहा ❀

प्रथम विवेक विराग पुनि शमादि षट्संपत्ति।
कही चतुर्थ मुमुक्षता, ये चव साधन सत्ति॥ १२॥
अविनाशी आतम अचल, जग तातें प्रतिकूल।
ऐसो ज्ञान विवेक है, सब साधन को मूल॥ १३॥
ब्रह्मलोक लौं भोग जो, चहै सबन को त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनि, कहत तांहि वैराग॥ १४॥
शम दम श्रद्धा तीसरी, समाधान उपराम।
छठी तितिक्षा जानिये, भिन्न भिन्न यह नाम॥ १५॥
मन विषयन ते रोकनों, शम तिहिं कहत सुधीर।
इंद्रियगण को रोकनों, दम भाखत बुधवीर॥ १६॥
सत्य वेद गुरु वाक्य हैं श्रद्धा अस विश्वास।
समाधान ताकूं कहत, मन विछेप को नास॥ १७॥

❀ चौपाई ❀

साधन सहित कर्म सब त्यागै, लखि विष सम विषयन तैं भागै।
दग नारी लखि ह्वै जिय ग्लाना, यह लक्षण उपराम बखाना॥१८॥

❀ दोहा ❀

आतप शीत क्षुधा तृषा, इनको सहन स्वभाव।
ताहि तितिक्षा कहत हैं, कोविद मुनिवर राव॥ १९॥
शमादि षट्संपत्तिको, भाखत साधन एक।
इम नव नहिं साधन भनै किंतु च्यारि सविवेक॥ २०॥
ब्रह्मप्राप्ति अरु बन्धकी हानि मोक्षको रूप।
ताकी चाह मुमुक्षुता भाखत मुनिवर भूप॥ २१॥

ये चव साधन ज्ञानके श्रवणादिक त्रय मेलि ।
तत्पद त्वंपद अर्थको, शोधन अष्टम मेलि ॥ २२ ॥

अन्तरंग और बहिरंग साधन

❀ दोहा ❀

अन्तरंग ये आठ हैं, यज्ञादिक बहिरंग ।
अन्तरंग धारै तजै, बहिरंगन को संग ॥ २३ ॥

बंध वर्णन

❀ दोहा ❀

प्रतिपादक प्रतिपाद्यता, ग्रन्थ ब्रह्म सम्बन्ध ।
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृत को फन्द ॥ २४ ॥

विषय वर्णन

मोक्ष परम प्रयोजन और ज्ञान अवान्तर प्रयोजन

❀ दोहा ❀

जीव ब्रह्मकी एकता, कहत विषय जनबुद्धि ।
तिनको जे अन्तर लहैं, ते मतिमन्द अबुद्धि ॥ २५ ॥

प्रयोजन वर्णन

❀ दोहा ❀

४
परमानन्द स्वरूपको, प्राप्ति प्रयोजन जानि ।
जगत समूल अनर्थ पुनि ह्वै तीको अनिहानि ॥ २६ ॥

शंकापूर्वक उत्तरका कवित्त

जीवको स्वरूप अति आनन्द कहत वेद ।
ताकूं सुखप्राप्तिको, असंभव बखानिये ॥
आगे जो अप्राप्त वस्तु ताकी प्राप्ति संभवत् ।
नित्य प्राप्त वस्तुकी तौ प्राप्ति किम मानीये ॥

ऐसी शंका लेश आनि कीजे न विश्वास हानि।
गुरुके प्रसादतैं कुतर्क भले भानिये ॥
करको कंकन खोयो ऐसो भ्रम भयो जिहिं।
ज्ञानतैं मिलत इम प्राप्त-प्राप्ति जानिये ॥ २७ ॥

❀ दोहा ❀

अधिष्ठानते भिन्न नहिं, जगत निवृत्ति बखान।
सर्प निवृत्ती रज्जु जिम, भये रज्जुको ज्ञान ॥२८॥
जो जन प्रथम तरंग यह, पढै ताहि तत्काल।
करहु मुक्त गुरु मूर्ति ह्वै, दादू दीनदयाल ॥ २९ ॥

द्वितीयस्तरंगः

अनुबंध विशेष निरूपण

❀ दोहा ❀

याके प्रथम तरङ्ग में, किय अनुबन्ध विचार।
कहूँ व द्वितीय तरङ्ग में, तिनही को विस्तार ॥ १ ॥
॥ पूर्वपत्ती प्रतिपादन करै है ॥

अधिकारी खंडन पूर्वपत्त

❀ दोहा ❀

मूलसहित जग ध्वंसकी, कोउ करत नहिं आश।
किन्तु विवेकी चहत हैं, त्रिविधि दुःख को नाश ॥ २ ॥
किये अनुभव जा वस्तु को, ताकी इच्छा होइ।
ब्रह्म नहीं अनुभूत इम, चहैं न ताकूं कोइ ॥ ३ ॥

चहत विषय सुख सकलजन, नहीं मोक्ष को पंथ ।
अधिकारी यातैं नहीं, पढै सुनै जो ग्रंथ ॥ ४ ॥

विषय-खंडन पूर्वपक्ष

❀ दोहा ❀

जीवब्रह्म की एकता, कह्यो विषय सो कूर ।
क्लेशरहित विभु ब्रह्म इक, जीव क्लेश को मूर ॥ ५ ॥

प्रयोजन-खंडन पूर्वपक्ष

❀ दोहा ❀

बंधनिवृत्ति ज्ञानतैं, बनै न बिन अध्यास ।
सामग्री ताकी नहीं, तजो ज्ञान की आस ॥ ६ ॥
सत्यवस्तु के ज्ञानतैं, संस्कार इक जान ।
त्रिविध दोष अज्ञान पुनि, सामग्री पहिचान ॥ ७ ॥
सत्यबन्ध की ज्ञानतैं, नहिं निवृत्ति संयुक्त ।
नित्यकर्म संतत करै, भयो चहै जो मुक्त ॥ ८ ॥

अधिकारी मंडन

❀ दोहा ❀

मूलसहित जगहानि बिन ह्वै न त्रिविध दुःख ध्वंस ।
यातैं जन चाहत सकल, प्रथम मोक्ष को अंस ॥ ९ ॥

❀ दोहा ❀

प्रिय अनुभव, सुखको सबही, ब्रह्म सुन्यो सुखरूप ।
ब्रह्मप्राप्ति या हेतुतैं, चहत विवेकी भूप ॥ १० ॥

केवल सुख सब जन चहैं, नहीं विषय की चाह ।
अधिकारी यातैं बनै, है जु विवेकी नाह ॥ ११ ॥

विषय मंडन

❀ दोहा ❀

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेद को गंध ।
रागद्वेष मति के धरम, तामैं मानत अंध ॥ १२ ॥

कार्यअध्यासनिरूपण

सजातीय ज्ञान संस्कार तैं अध्यास होत ।
सत्यज्ञानजन्य संस्कार को न नेम है ।
दोषकी न हेतुता अध्यास विषै देखियत ।
पटविषै हेतु जैसे तुरी तन्तु वेम है ॥
आतमा द्विजाति शंख पीत सिता कटु भासै ।
सीपमैं विरागी रूप देखै बिन प्रेम है ॥
नभ नील रूपवान भासत कटाह तम्बू ।
जिनके न कोऊ पित्त प्रभृति अछेम है ॥ १३ ॥

कारणअध्यासनिरूपण

॥ दोहा ॥

चित् सामान्य प्रकाशतैं, नशै नहीं अज्ञान ।
लहै प्रकाश सुषुप्ति मैं, चेतनतैं अज्ञान ॥१४॥

॥ दोहा ॥

दादूदीनदयाल जू, सत सुख परम प्रकास ।
जामैं मतिकी गति नहीं, सोई निश्चलदास ॥ १५ ॥

तृतीयस्तरंगः

श्रीगुरु शिष्य लक्षण और गुरुभक्ति फलप्रकार निरूपण

❀ दोहा ❀

पेख च्यारि अनुबंधयुत, पढै सुनै यह ग्रन्थ ।
ज्ञानसहित गुरु तैं जु नर लहै मोक्ष को पन्थ ॥ १ ॥
अनयासहि मति भूमिमैं, ज्ञान चिमन आबाद ।
है इहिकारन कहतहूँ, गुरु शिष्य संवाद ॥ २ ॥

❀ चौपाई ❀

वेद अर्थकूं भले पिछानै, आतम ब्रह्म रूप इक जानै ।
भेदपंचकी बुद्धि नसावै, अद्वय अमल ब्रह्म दरसावै ॥ ३ ॥
भव मिथ्या मृगतृषा समाना, अनुभव इम भाखत नहिं आना ।
सो गुरु दे अद्भुत उपदेशा, छेदक सिखा न लुंचित केशा ॥४॥

❀ दोहा ❀

करत मोक्ष भवग्राहतें दे असि निज उपदेश ।
सो दैशिक बुधजन कहत नहिं कृत गैरिकवेश ॥ ५ ॥
दैशिकके लक्षण कहे, श्रुतिमुनि वच अनुसार ।
सो लक्षणहैं शिष्य के, ह्वै जिनतैं अधिकार ॥ ६ ॥
ईश्वरतैं गुरुमें अधिक, धारै भक्ति सुजान ।
विन गुरुभक्ति प्रवीनहू, लहै न आतम ज्ञान ॥ ७ ॥
वेद उदधि विनगुरु लखै, लागै लौन समान ।
वादर गुरुमुख द्वार ह्वै, अमृतसैं अधिकान ॥ ८ ॥
दृतिपुट घट सम अज्ञजन, मेघसमान सुजान ।
पढै वेद इहिं हेतुतैं, ज्ञानिपैं तजि आन ॥ ९ ॥

वाणी अर्पण प्रकार

❀ छन्द ❀

भाखत गुनगन गुरुके बानी शुद्ध ।
दोष न कबहुँ अर्पण करि इम बुद्ध ॥ १८ ॥

❀ सोरठा ❀

जो चाहै कल्यान, तन मन धन वच अरपि इम ।
बसै बहुत गुरुस्थान, भिक्षातैं जीवन करै ॥१९॥

❀ चौपाई ❀

सो भिक्षा धरि दैसिक आगै । निज भोजनकूं नहिं पुनि मांगै ॥
जो गुरु देइ तु जाठर डारै । नहि दूजे दिन वृत्ति संभारै ॥२०॥

❀ दोहा ❀

पुनि गुरुके आगे धरै, भिक्षा शिष्य सुजान ।
निर्वेद न जियमैं करै, जो निज चहै कल्यान ॥२१॥

❀ चौपाई ❀

इम व्यवहृत अवसर जब पेखै । मुख प्रसन्न गुरु सन्मुख लेखै ।
विनती करै दोउ कर जोरी । गुरु आज्ञातैं प्रश्न बहोरी ॥२२॥

❀ दोहा ❀

तन मन धन बानी अरपि, जिहि सेवत चित लाय ।
सकल रूप सो आप है, दादू सदा सहाय ॥२३॥

चतुर्थस्तरङ्गः

उत्तमाधिकारी उपदेश निरूपण

❀ दोहा ❀

गुरु शिषके संवादकी, कहूँ व गाथ नवीन ।
पेखि जाहि जिज्ञासु जन, होत विचार प्रवीन ॥ १ ॥

तीनि सहोदर बालशुभ चक्रवर्ति सन्तान ।
शुभसन्तति पितु तिहि नमै, स्वर्ग पताल जहान ॥ २ ॥
तत्त्वदृष्टि इक नाम अहि, दूजो कहत अदृष्ट ।
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, उत्तम मध्य कनिष्ठ ॥ ३ ॥

❀ चौपाई ❀

बालपनो सब खेलत खोयो । तरुण पाय पुनि मदन विगोयो ।
धारि नारि गृह भार प्रकाशो । भोग लहै तिहुँ सब सुखराशी ॥४॥

❀ दोहा ❀

स्वर्ग भूमि पाताल के, भोगहि सर्व समाज ।
शुभसन्तति निज तेजबल, करत राज के काज ॥ ५ ॥
लहि अवसर इक तिहि पिता, निज हिय रच्यो विचार ।
सुख-स्वरूप अज आतमा, तासूँ भिन्न असार । ३ ॥
इहिं कारन तजि राज यह, जानूं आतमरूप ॥
स्वर्ग भूमि पाताल के, तिहुँ पुत्रह करि भूप ॥ ७ ॥

❀ चौपाई ❀

अस विचार शुभसन्तति कीना । मन्त्रि पेखि तिहुँ पुत्र प्रवीना ।
देश इकन्त समीप बुलाये । निज विराग के बचन सुनाये ॥८॥
भाख्यो पुनि यह राज संभारहु । इक पताल इक स्वर्ग सिधारहु ॥
अपर बसहु काशीभुवि स्वामी । रहत जहां शिव अन्तरयामी॥९॥
जिहि मरतहि सुनि शिव उपदेशा । अनयासहि तिहि लोक प्रवेशा॥
गंग अंग मनु कीर्ति प्रकासै । उत्तरबाहिनि अधिक उजासै ॥१०॥

❀ दोहा ❀

करहु राज इम भिन्न तिहुँ, पालहु निज निज देश ।
बिन विभाग भ्रातानको, भूमि काज ह्वै क्लेश ॥ ११ ॥

❀ इन्दव छन्द ❀

राजसमाज तजौं सबमैं अब । जानि हिये दुःख ताहि असारा ॥
और तु लोक दुःखी अपने दुख । मैं भुगत्यो जग क्लेश अपारा ॥
जे भगवान प्रधान अजान । समान दरिद्रन ते जन सारा ॥
हेतु विचार हिये जगके भग । त्यागि लखूं निज रूप सुखारा ॥१२॥
वाक्य अनन्त कहे इम तात । सुनै तिहुँ भ्रात सुबुद्धि निधाना ॥
बैठि इकन्त विचार अपार । भनै पुनि आपसमाहिं सुजाना ॥
दे दुःखमूल समाज हमै यह । आप भयो चह ब्रह्म समाना ॥
सो जन नागर बुद्धिक सागर । आगर दुःख तजै जु जहाना ॥१३॥

❀ दोहा ❀

यातैं तजि दुःखमूल यह, राज करौ निज काज ।
करि विचार इम गेहतैं, निकस्यो भ्रात समाज ॥ १४ ॥
तिहुँ खोजत सद्गुरु चले, धारि मोक्ष हिय काम ।
अर्थसहित क्रिय तान को, शुभसन्तति यह नाम ॥१५॥
खोजत खोजत देश बहु, सुरसरि तीर इकन्त ।
तरु पल्लव शाखा सघन, बन तामैं इकसन्त ॥ १६ ॥
बैठ्यो वट विटपहिं तरै, भद्रामुद्रा धारि ।
जीव ब्रह्मकी एकता, उपदेशत गुण टारि ॥ १७ ॥
दोष रहित एकाग्रचित, शिष्य संघ परिवार ।
लखि दैशिक उपदेश हिय, चहुँधा करत विचार ॥ १८ ॥
मनहुँ शम्भु कैलासमैं, उपदेशत सनकादि ।
पेखि ताहि तिहिं लहि शरण करी दंडवत आदि ॥ १९ ॥
कियो वास षटमास पुनि, शिष्य रीति अनुसार ।
करी अधिक गुरु सेव तिहूँ, मोक्षकाम हिय धार ॥ २० ॥

ह्वै प्रसन्न श्रीगुरु तबै, ते पूछे मृदुबानि ।
किहि कारण तुम तात तिहुँ, बसहु कौन कह आनि ॥२१॥
तत्त्वदृष्टि तब लखि हियें, निज अनुजनका सैन ।
कहै उभयकर जोरि निज, अभिप्राय के बैन ॥ २२ ॥

॥ तत्त्वदृष्टि उवाच ॥

* दोहा *

भो भगवन हम भ्रात तिहुँ. शुभसन्तति सन्तान ।
लख्यो चहैं बहु भेव हिय, दीन नवीन अज्ञान ॥ २३ ॥
जो आज्ञा ह्वै रावरी, तौ ह्वै पूछि प्रवीन ।
आप दयानिधि कल्पतरु, हम अति दुखित अधीन ॥२४॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

* सोरठा *

सुनहु शिष्य मम बात, जो पूछहु तुम सो कहुँ ।
लहो हिये कुशलात, संशय कोउ ना रहै ॥ २५ ॥

* दोहा *

गुरु की लखी दयालुता, शिष्य हिये भौ चैन ।
काजसिद्ध निज मानि हिय, भाखे सविनय बैन ॥ २६ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

* चौपाई *

भो भगवन तुम कृपानिधाना । हौ सर्वज्ञ महेश समाना ॥
हम अजान मति कछू न जानै । जन्मादिक संसृति भय मानै ॥

कर्म उपासन कीने भारी । और अधिक जग पाशी डारी ॥
आप उपाय कहो गुरु देवा । है जातैं भवदुख को छेवा ॥२८॥
पुनि चाहत हम परमानन्दा । ताको कहो उपाय सुकन्दा ॥
जब कृपाकरि कहि हौ ताता । तब ह्वै है हमरे कुशलाता ॥ २९॥

॥ गुरु का उत्तर ॥

❀ दोहा ❀

मोक्षकाम गुरु शिष्य लखो, ताको साधन ज्ञान ।
वेद उक्त भाषण लगे, जीव ब्रह्म भिदभान ॥ ३० ॥
परमानन्द मिलाप तूं जो शिष्य चहै सुज्ञान ।
जन्मादिक दुख नाश पुनि, भ्रांतिजन्य तिहिं मान ॥ ३१ ॥
परमानन्द स्वरूप तूं, नहिं तामैं दुखलेश ।
अज अविनाशी ब्रह्मचित्, जिन आने हिय क्लेश ॥ ३२ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

❀ दोहा ❀

विषय संग क्यूं भान है, जो मैं आनन्द रूप ।
अब उत्तर याको कहौ, श्रीगुरु मुनिवर भूप ॥ ३३ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

❀ चौपाई ❀

आतम विमुख बुद्धि जन जोई । इच्छा ताहि विषयकी होई ॥
तासूं चंचल बुद्धि बखानो । सुख आभास होइ तहं हानी ॥३४॥
जब अभिलषित पदारथ पावै । तब मति छन विक्षेप नशावै ॥
तामैं है आनन्द प्रतिबिम्बा । पुनि छनमैं बहु चाह बिडम्बा ॥३५॥

तातैं है थिरता की हानी। सो अनन्द प्रतिबिम्ब नसानी॥
विषय संग इम आनन्द होई। बिन सतगुरू यह लखै न कोई॥३६॥

❀ दोहा ❀

विषय संगतैं ह्वै प्रगट, आतम आनन्द रूप।
शिष्य सुनायो तोहि मैं, यह सिद्धान्त अनूप॥ ३७॥

❀ सोरठा ❀

सो तूं मोहि व भाख, जो यामैं शंका रही।
निज मति मैं मति राख, मैं ताको उत्तर कहूँ॥ ३८॥

* चौपाई *

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

भो भगवन तुम दीनदयाला। मेट्यो मम संशय ततकाला॥
यामैं कछुक रही आशङ्का। सो भाखूं अब ह्वै निर्बङ्का॥ ३९॥
आतम विमुख बुद्धि अज्ञानी। ताकी यह सब रीति बखाना॥
ज्ञानी जनको कह्यौ विचारा। कोउ न तुम सम और उदारा॥४०॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

❀ दोहा ❀

सुनहु शिष्य इक बात मम, सावधान मन कान।
हैं द्वैविध आतम विमुख, अज्ञानी रु सुजान॥ ४१॥
ह्वै विस्मृत व्यवहार मैं कबहुँक ज्ञानी सन्त।
अज्ञानी विमुखहि रहै, यह तूं जान सिद्धन्त॥ ४२॥

॥ शिष्य उवाच ॥

* चौपाई *

हे प्रभु परमानन्द बखान्यो। मेरो रूप सु मैं पहिचान्यो॥
नहिं तो मैं भवबन्धन लेशा। कह्यो आप पुनि यह उपदेशा॥४३॥

यामैं शङ्का मुहि यह आवै। जातैं तव वच हिय न सुहावै ॥
नहिं मोमैं यह बन्ध पसारो। कहौ कौन तौ आश्रय न्यारो ॥४४॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

* सोरठा *

सुनहु शिष्य मम बानि. जातैं तव शंका मिटै।
है जगकी अतिहानि, तो मोमैं नहि और मैं ॥ ४५ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

* दोहा *

जो भगवन है कहुँ नहीं, जन्म मरण जग खेद।
ह्वै प्रत्यक्ष प्रतीति क्यूं, कहो आप यह भेद ॥ ४६ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

* दोहा *

आत्मरूप अज्ञानतैं, ह्वै मिथ्या परतीति।
जगत स्वप्न नभनीलता, रज्जु भुजगकी रीति ॥ ४७ ॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

* चौपाई *

मिथ्या सर्प रज्जु मैं जैसे। भास्यो भव आतम मैं तैसे ॥
कैसे सर्प रज्जु मैं भासै। यह संशय मन बुद्धि विनासै ॥४८॥
असत-ख्याति पुनि आतम-ख्याति। ख्याति-अन्यथा अरु अख्याती॥
सुने चारि मत भ्रमकी ठौरा। मानूं कौन कहौ यह ब्यौरा ॥४९॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

* दोहा *

ख्याति अनिर्वचनीय लखि पंचम तिनतैं और।
युक्तिहीन मत चारि ये, मानहु भ्रमकी ठौर ॥ ५० ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

* दोहा *

यह मिथ्या परतीति है, जामैं जगत अपार।
सो भगवन मोकूं कहौ. को याको आधार ॥ ५१ ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

* दोहा *

तव निजरूप अज्ञानतैं, है मिथ्या जग भान।
अधिष्ठान आधार तूं, रज्जु भुजंग समान ॥ ५२ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

* दोहा *

भगवन मिथ्या जगत कौं, द्रष्टा कहिये कौन।
अधिष्ठान आधार जो, द्रष्टा होय न तौन ॥ ५३ ॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

मिथ्या वस्तु जगतमैं जे हैं। अधिष्ठानमैं कल्पित ते हैं ॥
अधिष्ठान सो द्विविध पिछानहु। इक चेतन दूजो जड जानहु ॥५४॥
अधिष्ठान जड वस्तु जहां है। द्रष्टा तातैं भिन्न तहां है ॥
जहां होय चेतन आधारा। तहां न द्रष्टा होवै न्यारा ॥ ५५ ॥

* दोहा *

चेतन मिथ्या स्वप्न को, अधिष्ठान निर्धार।
सोई द्रष्टा भिन्न नहिं, तैसै जगत विचार ॥ ५६ ॥
इम मिथ्या ससार दुख, है तोमैं भ्रम भान।
ताकी कहा निवृत्ति तूं, चाहै शिष्य सुजान ॥ ५७ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जग यद्यपि मिथ्या गुरुदेवा। तथापि मैं चाहूँ तिहि छेवा।
स्वप्न भयानक जाकूं भासै। करि साधन जन जिम तिहि नासै ५८
यातैं हूं जातैं जगहाना। सो उपाय भाखो भगवाना।
तुम समान सतगुरु नहि आना। श्रवण फूंक दे वचक नाना ॥५६॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

* सोरठा *

सो मैं कह्यो बखानि, जो साधन तैं पूछियो।
निज हिय निश्चय आनि, रहै न रंचक खेद जग ॥ ६० ॥

* दोहा *

निज आतम अज्ञान तैं, ह्वै प्रतीत जग खेद।
नशै सु ताके बोधतैं, यह भाखत मुनि वेद ॥ ६१ ॥
जग मोमैं नहिं "ब्रह्ममैं" "अहब्रह्म" यह ज्ञान।
सो तोकूं शिष मैं कह्यो, नहिं उपाय को आन ॥ ६२ ॥
कर्म उपासनते नहिं, जगनिदान तम नाश।
अन्धकार जिम गेहमैं, नशै न बिन परकाश ॥ ६३ ॥
भाख्यो शिष उपदेश मैं. जगभंजक हिय धारि।
जो यामैं संशय रह्या, सो तूं पूछ विचारि ॥ ६४ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

* चौपाई *

भो भगवन जो कछु तुम भाख्यो। सो सब सत्य जानि हिय राख्यो ॥
जग निदान अज्ञान बखान्यो। ताको भञ्जक ज्ञान पिछान्यो॥६५॥

ज्ञानरूप बर्नन पुनि कीनां । जग मिथ्या सो मैं भल चीना ॥
सुख-स्वरूप आतम परकास्यो । दया तिहारी सो मुहिं भास्यो ॥६६॥
पुनि भाख्यो 'तूं ब्रह्म स्वरूपं' । यह मैं लख्यो न भेद अनूपं ॥
यामैं मुहि शंका इक आवै जीव ब्रह्मको भेद जनावै ॥ ६७ ॥

॥ शंकाकी चौपाई ॥

पुन्य पापका हूँ मैं कर्त्ता । जन्म मरण औ सुख दुख धर्त्ता ॥
और अनेक भांति जग भासै । चहुँ ज्ञान अज्ञान जु नासै ॥६८॥
जो याते विपरीत स्वरूपा । ताकूं ब्रह्म कहत मुनि भूपा ॥
कहो एकता कैसे जानूं ? रूप विरुद्ध हिये पहिचानूं ॥ ६९ ॥
सुनहु गुरु दूजो पुनि संशै । जीव ब्रह्म एकत्व प्रनंशै ॥
एक वृक्षमें समद्वै पच्छी । फल भोगै इक दूजो स्वच्छी ॥ ७० ॥
भोगरहित परकाश असंगा । वेद वचन यह कहत प्रसंगा ॥
कर्म उपासन पुनि बहु भाखै । जीव ब्रह्म यातैं द्वय राखै ॥ ७१ ॥

×जीव ॥ गुरुरुवाच ॥ ← नष्ट

* चौपाई *

सुनहु शिष्य इक कहू विचारा । है जातैं शङ्का निस्तारा ॥
घटाकाश इक जल-आकाशा । मेघाकाश महा-आकाशा ॥७२॥
च्यारि भेद ये नमके जानहु । पुनि चेतनके तथा पिछानहु ॥
इक कूटस्थ जीव पुनि कहिये । ईश ब्रह्म हिय जाने रहिये ॥७३॥
जब इनका तूं रूप पिछानै । निज शङ्का तबहि सब भानै ॥
यातैं सुन इनको अब भेदा । नशै सुनत जन्मादिक खेदा ॥७४॥

* दोहा *

जलपूरित घटकूं जु दे, जितनो नभ अवकाश ।
युक्तिनिपुण पण्डित कहैं ताकूं घट आकाश ॥ ७५ ॥

जलपूरित घटमैं जु पुनि. है नभको आभास ।
घटाकासयुत विज्ञजन, भाखत जल-आकास ॥ ७६ ॥
जो जलमै आकाश को, नहीं प्रतिबिम्ब लखाइ ।
थोरे मैं गम्भीरता, है प्रतीत किहि भाइ ॥ ७७ ॥
यातैं जलमैं व्योमको लखि आभास सुजान ॥
रूपरहित जिम शब्दतैं, है प्रतिध्वनि को भान ॥ ७८ ॥
जो मेघहि अवकास दे, पुनि तामैं आभास ॥
तिन दोनूंकूं कहत हैं बुधजन मेघाकास ॥ ७९ ॥
बर्षत मेघ अनन्त जल. उदक सहित इति हेत ॥
दर्क नहि नभ आभास बिन इम प्रतिबिम्ब समेत ॥८०॥
बाहिर भीतर एकरस, व्यापक जो नभरूप ॥
महाकास ताकूँ कहैं, कोविद बुद्धि अनूप ॥ ८१ ॥
चतुर्भांति नभके कहै, लच्छन श्रुति अनुसार ॥
अब चेतनके सिष्य सुन, जासूं लहै विचार ॥ ८२ ॥
मति वा व्यष्टि अज्ञानको, अधिष्ठान चैतन्य ॥
घटाकास सम मानिये सो कूटस्थ अजन्य ॥ ८३ ॥
काम-कर्म-युत बुद्धिमैं; जो चेतन-प्रतिबिम्ब ॥
जीव कहै विद्वान तिहिं. जल-नभ तुल्य साबिम्ब ॥ ८४ ॥
अधिष्ठान कूटस्थसैं है आभास बहाल ।
रक्त पुष्प ऊपर धर्यो, स्फटिक होइ जिम लाल ॥ ८५ ।
बुद्धिमाहि आभास जो, पुन्य पाप फल भोग ॥
गमन आगमन सो करै, नहिं चेतनमैं जोग ॥ ८६ ॥
मिथ्या नभ घट सग ज्यूँ, लहै क्रिया बहु भांति ॥
घटाकास अक्रिय सदा, रहै एकरस शांति ॥ ८७ ॥

अथवा व्यष्टि अज्ञानमैं, जो चेतन अभास ।
अधिष्ठान कूटस्थयुत, कहैं जीवपद तास ॥८८॥
चित्छाया मायाविषै, अधिष्ठान संयुक्त ।
मेघव्योम सम ईस सो, अंतरयामी मुक्त ॥८९॥
अंतर बाहिर एकरस, जो चेतन भरपूर ।
विभुनभ सम सो ब्रह्म है, नहिं नेरे नहिं दूर ॥९०॥
चतुभांति चेतन कह्यो, तामैं मिथ्या जीव ।
पुन्य पाप फल भोगवै, चित कूटस्थ सु सीव ॥९१॥
कर्मी छाया देत फल, नहिं चेतनमैं जोग ।
सो असंग इकरूप है, जानै भिन्न कुलोग ॥९२॥

॥ चौपाई ॥

अहो शिष्य तैं प्रश्न जु कीनै, तिनके ये उत्तर मैं दीनै ।
कहै जु तैं, तरुमैं द्वै पक्षी, इक भोगै इक आहि अनिच्छी ॥९३॥
ते चेतन आभास लखाये, नभ छाया ज्यूं भिन्न वताये ।
कह्यो भिन्न कर्मी फलदाता, मति माया छाया सो ताता ॥९४॥
जीव ईसमैं चेतनरूपं, भेदगंधतै रहित अनूपं ।
यातै "अहं ब्रह्म" कह जानौ, "अहं" सब्द कूटस्थ पिछानौ ॥९५॥
"ब्रह्म" सब्द को अर्थ सु भाख्यो, महाकास सम लच्छेर्थ जु राख्यो ।
"अहंब्रह्म" नहिं जौलौं जानै, तौलौं दीन दुखित भय मानै ॥९६॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

कहौ गुरु है कौनकूं, "अहंब्रह्म" यह ज्ञान ।
नहिं जानूं मैं आपके, भाखै विना सुजान ॥९७॥

❀ श्रीगुरुरुवाच ❀

॥ सोरठा ॥

कहूँ अवस्था सात, सुन सिष्य व आभासकी।
नहिं चेतनकी तात, तिनहीमैं यह ज्ञान है ॥९८॥

॥ चौपाई ॥

इक अज्ञान आवरन सु जानौ, भ्रांति द्विविध पुनि ज्ञान पिछानौ।
सोकनास अतिहर्ष अपारं, सप्त अवस्था इम निर्धारा ॥ ९९ ॥

॥ दोहा ॥

"नहिं जानूं मैं ब्रह्मकूं", याकूं कहत अज्ञान।
"ब्रह्म है न नहिं भान है" यह आवरन सुजान ॥१००॥
जन्ममरन गमनागमन, पुन्यपाप सुखखेद।
निजस्वरूपमैं भान है भ्रांति बखानी वेद ॥१०१॥
द्वैविधज्ञान बखानिये, इक परोक्ष अपरोक्ष।
"अस्तिब्रह्म" परोक्ष है, "अहंब्रह्म" अपरोक्ष ॥१०२॥
"नहिं ब्रह्म" या अंसको, करै परोक्ष विनास।
सकल अविद्याजालकूं, दूजो नसै प्रकास ॥१०३॥
जन्ममरन मोमैं नहीं, नहिं सुखदुखको लेस।
किंतु अजन्यकूटस्थ मैं, भ्रांतिनास यह वेस ॥१०४॥
संसयरहित स्वरूपको, होइ जु अद्वयज्ञान।
तब उपजै हिय मोद तब, सो तू हर्ष पिछान ॥१०५॥
कही अवस्था सात मैं, तोकूं शिष्य सुजान।
सो सगरी आभासकी, है तिनहीमैं ज्ञान ॥१०६॥
"ज्ञान होत है कौनकूं?" यह पूछी तैं बात।

मैं ताको उत्तर कह्यो, चहै सु पूछ व तात ॥१०७॥
भगवन ह्वै आभास कूं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
तुम भाख्यो सो मैं लख्यो, पुनि संका इक आन ॥१०८॥

॥ चौपाई ॥

है आभास ब्रह्मतैं न्यारा, अस तुम पूर्व कियो निर्धारा ।
"अहं ब्रह्म" सो कैसै जानै ?, आपहि भिन्न ब्रह्मतैं मानै ॥१०९॥
जो जानै तौ मिथ्याज्ञाना, होइ जेवरी भुजग समाना ।
श्रीगुरु यह संदेह मिटाऊ, युक्तिसहित निजउक्ति सुनाऊ ॥११०॥

॥ दोहा ॥

'अहं' शब्दके अर्थको, सुन अब शिष्य विवेक ।
तव हियके जासूं नसै, संक कलंक अनेक ॥१११॥
है यद्यपि आभासमैं, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान ।
तथापि सो कूटस्थको, लहै आप अभिमान ॥११२॥
ताको सदा अभेद है, विभुचेतनतैं तात ।
बाध समै निजरूपहू, ब्रह्मरूप दरसात ॥११३॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

अहंवृत्तिमैं भान है, साक्षी अरु आभास ।
सो क्रमतैं वा क्रम बिना, याको करहु प्रकास ॥११४॥

॥ श्रीगुरुवाच ॥

सावधान है शिष्य सुन, भाखूं उत्तर सार ।
सुनत नसै अज्ञान तम, बोधभानु उजियार ॥११५॥
एकसमैयही भान है, साक्षी अरु आभास ।
दूजो चेतनको विषय, साक्षी स्वयंप्रकास ॥११६॥

॥ तत्त्वदृष्टिरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रियके संबंध विन, "अहं ब्रह्म" यह ज्ञान।
कैसे है प्रत्यच्छ प्रभु ? मोकूं कहौ वखान॥

॥ श्रीगुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

इंद्रिय विन प्रयच्छ नहिं, सिष यह नियम न जान॥
विन इंद्रिय प्रत्यच्छ है, जैसे सुखदुःख ज्ञान॥११८॥

॥ दोहा ॥

गुरुको अस उपदेस सुनि, तत्त्वदृष्टि बुद्धिमंत॥
ब्रह्मरूप लखि आतमा, कियो भेदभ्रम अंत॥११९॥
"अहं ब्रह्म" या वृत्तिमैं, निरावरन है भान।
दादू आदू रूप सो, यूं हम लियो पिछान॥१२०॥

❀❀❀❀❀❀❀❀

❀ पंचमतरंगः ❀

❀❀❀❀❀❀❀❀

॥ अथ श्रीगुरुवेदादि व्यावहारिक प्रतिपादन और मध्यमाधिकारी साधन निरूपण ॥

❀ प्रश्न की ❀

॥ चौपाई ॥

वेद रु गुरु जो मिथ्या कहिये, तिनतैं भवदुख नस्यो न चहिये।
जैसें मिथ्या मरुथलको जल, प्यासनासको नहिं तामैं बल॥१॥

सत्य वेद गुरु कहैं तु द्वैत, भयो गयो सिद्धांत अद्वैत।
यूं संकरमत पेखि असुद्धा, तज्यो सकल मध्वादि प्रबुद्धा ॥ २ ॥
यह संका भगवन् मुहि उपजै, उत्तर देहु दयालु न कुपिजै।

❀ उत्तर की ❀ < भ्रान्ति

॥ चौपाई ॥

॥ शंकरमत की प्रमाणता ॥

गुरु बोले सिषकी सुनि बानी, शंकरको मत परम प्रमानी ॥ ३ ॥
चारि यार मध्वादिक जे हैं, वेदविरुद्ध कहत सब ते हैं।
यामैं व्यासवचन सुनि लीजै, शंकरमतहि प्रमान करीजै ॥ ४ ॥
कलिमैं वेदअर्थ बहु करि हैं, श्रीशंकारशिव तब अवतरि है।
जैनबुद्धमत मूल उखारै, गंगातैं प्रभुमूर्ति निकारै ॥ ५ ॥
जैसै भानु उदय उजियारो, दूरि करै जगमैं अंधियारो।
सब वस्तुहि ज्यूंको त्यूं भासै, संसै और विपर्यय नासै ॥ ६ ॥
वेदअर्थमैं त्यूं अज्ञाना, नसि है श्रीशंकरव्याख्याना।
करि हैं ते उपदेश यथारथ, नासहि संशय अरु अयथारथ ॥ ७ ॥
और जु वेदअर्थकूं करि हैं, ते सठ वृथा परिश्रम धरि हैं।
यूं पुरानमैं व्यास कही है, संकरमतमैं मान यही है ॥ ८ ॥
मध्वादिकको मत न प्रमानी, यह हम व्यासवचनतैं जानी।
और प्रमान कहूं सो सुनिये, बालमीकरिषि मुख्य जु गिनिये ॥९॥
तिन मुनि कियो ग्रंथ वासिष्ठा, तामैं मत अद्वैत स्पष्टा।
श्रीशंकर अद्वैतहि गान्यो, तिनको मत यह हेतु प्रमान्यो ॥१०॥

॥ भेदवाद की अप्रमाणता ॥

बालमीकरिषि वचन विरुद्धं, भेदवाद लखि सकल असुद्धं ॥११॥
कियो ग्रंथ श्रीहर्षजु खंडन, खंडनभेद एकतामंडन।
लिख्यो तहां यह बहु विस्तारा, भेदवाद नहिं युक्ति सहारा ॥१२॥

और भेद-धिकार जु ग्रंथा, तहां भेदखंडनको पंथा ।
कठिन दुरूहतर्क हैं ते अति, नहीं पैठिहि सिष तिनमैं ते मति ।१३।
यातैं कही न ते तुहि उक्ती, करै जुं भेदहि खंडन युक्ती ।
अप्रमान मत भेद लख्यो जव, खंडनमैं युक्ति न चहियत तव ।।१४
भेदप्रतीति महादुखदाता, यम कठमैं यह टेरत ताता ।
यातैं भेदवाद चित त्यागहु, इक अद्वैतवाद अनुरागहु ।।१५।।

।। श्रुतिवाक्य ।।

"मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति" इति श्रुतेः ।
'द्वितीयाद्वै भयं भवति'' ।।
"अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेव
स देवानाम्" इति द्वे श्रुती ।।

❋ श्रुतिवाक्य अर्थ की ❋

।। चौपाई ।।

जो द्वितीयकूं मतिमैं धारै, भय ताकूं यह वेद पुकारै ।
ज्ञेय ध्येय मोतैं कछु औरा, लखै सु पसु यह वेद ढंढोरा ।।१६।।
सिष यातैं मध्वादिकवानी, सुनी सु विसरहु अति दुखदानी ।।
द्वैतवचन तव हियमैं जौलौं, ह्वै साछात् अद्वैत न तौलौं ।।१७।।

।। राजाके मंत्री भर्छुकी कथा ।।

द्वैतवचनको स्मरन जु होवै, ह्वै साछात तु ताहि विगोवै ।
पूर्वस्मृती साछात विनासत, सुन इक अस तुहि कथा प्रकासत ।।
राजाको इक भर्छू मंत्री, राजकाज सव ताके तंत्री ।
और मुसाहिव मंत्री जेते, करैं ईरखा तासू तेते ।। १९ ।।
करि न सकत भर्छूकी हाना, महाराज निजजिय प्रिय जाना ।
तव सव मिलि यह रच्यो उपाया, धारी दौर दंगा वनवाया ।।२०।।

सो सुनि राजहि करी कचहरी, लिये बुलाय मुसहिब जहारी।
तिनसूं कह्यो वेग चढि जावहु, दौरत धारि सु धूम नसावहु॥२१॥
तव सब मिलि उत्तर यह दीना, सदा एक भर्छुहि तुम चीना।
मरनलिये अब हमहिं पठावतु, भर्छूकूं कहु क्यूं न चढावतु ? ॥२२॥
तब बोल्यो भर्छू कर जोरी, महाराज सुनु विनती मोरी।
आज्ञा होय मोहि यह रौरी, मारूं सकल धारि जो दौरो ॥२३॥
तब भर्छूकूं बोल्यो राजा, तुम चढि जाहु समारहु काजा।
ते जातहि भर्छू सब मारें, वनक कृषीवल किये सुखारे ॥२४॥
भर्छू विजय सुन्यो तिन जबही, राजापैं भाख्यो यह तबही।
"भर्छू मर्यो न सुधर्यो काजा", मिथ्यावचन सुनतही राजा ॥२५॥
और प्रधान मुसाहिब कीनो, छत्र रु पीनस पंखा दीनो।
बंन्दोबस तिन कीने अपनहु, सुनै न राजा भर्छु सुपनहु ॥२६॥
सब वृतांत भर्छु तब सुन्निके, रूप तपस्वि धर्यो यह गुनिके।
राजापैं सुहिं जान न दै हैं, गये द्वारलग प्रानहु लै हैं ॥२७॥
अबलग सबहि पदारथ भोगै, देह रु इन्द्रिय रहे अरोगै।
तिय जो चारि चतुर्पद सोहत, च्यारि फूल फल खग मन मोहत॥२८॥

॥ दोहा ॥

॥ चारि चतुर्पद ॥

करि कर उरु मृग खुरु पुरज, केहरिसी कटिमान। लोचन
लोयन चपल तुरंगसे, बरनै परमसुजान ॥ २९ ॥

॥ चारि फूल ॥

कमल वदन अलसीकुसुम, चिवुकचिन्ह मतिधाम।
तिलप्रसूनसी नासिका, चंपक तनु अभिराम ॥३०॥

॥ चारि फल ॥

बिंब अधर दारिम दसन, उरज बिल्वसे धीर।
कोहरसी एडी कहत, कोविद मति गभीर ॥३१॥

॥ चारि खग ॥

है मरालसी मंदगति, कंठ कपोत सुढार ।
पिकसी बानी अति मधुर, मोरपुच्छसै बार ॥३२॥

॥ चौपाई ॥

गंग पयोनिधि कबहु न त्यागत, जातैं रसिकसु मन अनुरागत ।
विधि तिलोत्तमा अपर बनाई, हन्यो सुंद जिन सो न सुहाई ॥
मिहिंदी जावक कर पद रागा, तिनको मैं किय निमिष न त्यागा ।
और भोग तिनके उपकरना, भोगै सबै निकट भौ मरना ॥३४॥
अहो मूढ़को मम सम जगमैं, भौ लंपट अबलग मैं भगमैं ।
गीला मलिन मूत्रतैं निसिदिन, स्रवत मांसमय रुधिर जु व्रत बिन
चर्म लपेट्यो मांसमलीना, ऊपरि बार असुद्ध अलीना ।
इनमैं कौन पदारथ सुन्दर, अति अपवित्र ग्लानिको मन्दिर ॥३६॥
तियकी जंघ जघन्य सदाही, रंभा करिकर उपमित जाही ।
आर्द्र मूतको मनु पतनारो, रुधिर मांस त्वक् अस्थि पसारो ॥३७॥
लगत जु नीके स्थूलनितंबा, तिनके मध्य मलिन मलबंबा ।
तट ताके ते अति दुर्गंधा, है आसक्त तहां सो अंधा ॥३८॥
अधर जो थूक लारसैं भीजत, तजि ग्लानि निज मुखमैं दीजत ।
दृष्टमदा नारी मदिरा भजि, शुद्ध अशुद्ध विवेक दियो तजि ॥३९॥
कहत नारिके अंग जु नीके, करत विचार लगत यूं फीके ।
कपट कूटको आकर नारी, मैं जानी अब तजन विचारी ॥४०॥

॥ भर्तृ के वैराग्य का कथन ॥

कलाकंद दधि पायस पेरा, तंदुल घृत व्यंजन बहुतेरा ।
और विविध भोजन जे कीने, तिन सबके रसना रस लीने ॥
अबलौं भई न तृप्ति जु याकूं, यातैं वृथा पोषिना ताकूं ।
छुधा विनासहि वनफल कंदा, ह्वै क्यूं पराधीन यह बंदा ॥४२॥

गुहा महल वन बाग घनेरा, क्यूं राजाको है हूँ चेरा।
सैजसिला अरु निजभुज तकिया, निर्झरजल कर पात्र न रुकिया॥
बैठी इकंत होय सुछंदा, लहिये भछूं परमानंदा।
बिन एकांत न आनद कबहू, मिलै अब्धिलौं पृथ्वी सबहू॥४४॥

॥ राजासैं लेके ब्रह्मापर्यन्त सर्वसुख एकान्त मैं होवैहैं ॥

॥ दोहा ॥

पृथ्वीपती निरोग युव, दृढ स्थूल बलवन्त।
विद्यायुत तिहि भूपमैं, मानुषसुखको अन्त॥ ४५॥

॥ चौपाई ॥

जे मानव गंधर्व कहावत, ता नृपतैं सतगुन सुख पावत।
होत देव गंधर्व जु औरा, तिनतैं तहँ सौगुन सुख ब्यौरा॥४६॥
सुख गंधर्व देवको जो है, तातैं सतगुन पितरनको है।
पुनि अजान देवमैं तिनतैं, सौगुन कर्मदेवमैं जिनतैं॥४७॥
मुख्यदेव जे हैं पुनि तिनमैं, कर्मदेवतैं सौगुन जिनमैं।
जो त्रिलोकपति इन्द्र कहीजै, तामैं पुनि सौगुन गिनि लीजै॥४८॥
सबदेवनको गुरू बृहस्पति, लहैं इन्द्रतैं सतगुन सुखगति।
जाको नाम प्रजापति भाखत, गुरुतैं सुख सौगुन सो राखत॥४६॥
ताहूतैं सौगुन ब्रह्महि सुख, लहै न रंचक सो कबहू दुख।
इतने या क्रमतैं सुख पावत, तैतिरीयश्रुति यूं समुझावत॥५०॥

॥ सोरठा ॥

राजातैं ब्रह्मांत, कह्यो जु सुख सगरो लहै।
रहत सदा एकांत, कामदग्ध जाको न हिय॥ ५१॥

॥ चौपाई ॥

है एकान्त देश में अस सुख, युवति पुत्र धन संग सदा दुःख।

ऊठने

॥ युवतिसंगदुःखवर्णन ॥

युवति कुरूप कुबोलिनि जाके, सदा सोक हिय ह्वै यह ताके ॥५२॥
प्रभु पुरीषपंडा यह रंडा, दिय मुहि कौन पापको दंडा।
बोलत वैन व्याल कागनिके, भेड़ भैसि न्योरी नागनिके ॥५३॥
भूत भावती ऊँठनिको है, बोल खरीको सुनि खर मोहै।
रैनि जु ऊँचे स्वरहि उचारत, स्यार हजारन सुनत पुकारत ॥५४॥
निरपराध तिय बिन वैरागा, तजत न बनत पाप जिय लागा।
रहत दुखित यूं निसिदिन पिय मन, तिय कुवाल सुनि लखि कुरूप तन॥
कामनि ह्वै जु सुरूप सुबानी, सो कुरूपतैं ह्वै दुखदानी।
चमकचामकी पियहि पियारी, अर्थ धर्म नसि मोक्ष बिगारी ॥५६॥

॥ युवतिसंगसैं धनबिगार ॥

मीठें वैन जहरयुत लडवा, खाय गमाय बुद्धि ह्वै भडवा।
और कछू सुपनहु नहिं देखै, कामअंध इक कामनि लेखै ॥
धन कछू मिलै जु बाहिर घरमैं, सो सब खरचै कामनि धरमैं।
भूषन वस्त्र ताहि पहिरावै, गुरु पितु मात याद्हिु न आवै ॥५८॥
पायस पान मिठाई मेवा, देय भक्तितैं तिय निजदेवा।
नेह-नाथ-नाथ्यो नहिं छूटै, तियकसान पियबैलहि कूटै ॥५९॥

॥ युवतिसंगसैं धर्मबिगार ॥ कि

ज्यू सूवा पिंजरेमैं बंधुवा, सिखयो बोलत सुद्ध असुद्ध वा।
तैसैं जो कछु नारि सिखावत, सो गुरु पितु मातही सुनावत ॥६०॥
जैसैं मोर मोरनी आगै, नाचि रिझाय आप अनुरागै।
तैसैं विविधवेष करि तियको, मन रिझाय रीझत मन पियको ॥
जब दुहूनको मन अनुराग्यो, तबहि मदन मदिरा मद जाग्यो।
भये बावरे वसनहु त्यागे, अतिउन्मत घूरन पुनि लागे ॥६२॥

प्रेतरूप धरि नग्न अमंगल, भिरि फिरि भिरत मेषमन दंगल ।
ज्यूं लोटत मद्य पि मतवारा, गिनत मलीन गलीन न नारा ॥६३॥
त्यूं नरनारि मदन-मद-अन्धे, अतिग लाज आगनमें बन्धे ।
करत मदन मद भ्रम जे मनकूं, है अवरज मुनि त्यागी जनकूं ॥६४॥
नसै मदनमदतें मति नरकी, लखत न ऊंच नीच परघरकी ।
तियहुँ बावरी मदन बनाई, क्रिया दुखद जिहि है सुखदाई ॥६५॥
प्रबल काम मदिरा मद जागै, तब द्विज-तिय श्वानकतें लागै ।
पिये मदन मदिरा नरनारी, ऐसैं करत अनन्त खुआरा ॥६६॥
कामदोष यूं नरहि विगोवत, सो प्रकट सुन्दरी तिय जोवत ।
यातैं अतिसुरूप तिय दुखदा, ताका त्याग करत मुनि सुखदा ॥६७॥
जो सुरूप तियमैं अनुरागत, विषसम दुखद पेखि नहिं भागत ।
उभयलोककी करत सु हानी, मुनिजनगन गुन साख बखानी ॥६८॥

॥ युवतिसंगसें विंदुका नाश ॥

जो नानाविध भोजन खावै, रस ताको फल विन्दु उपावै
जीवन विन्दु अधीन सबनको, नसत सोक विन्दुहुतें मनको ॥६९॥
है जब जनको मन मलवासी, करत शोक अति धरत उदासी ।
रुधिर निवास धरत मन जबहू, चंचल अधिक रजोगुन तबहू ॥७०॥
जब मन करत बिन्दुमैं बासा, तबैं सोक चंचलता नासा ।
पुनि आपहि बलवंत जन जानै, है प्रसन्न सुभ कारज ठानै ॥७१॥
विन्दु अधिक होवै जा जनमैं, सुन्दरकान्तिरूपता तनमें ।
विन्दुहुको तनमैं उजियारो, नसै विन्दु तन मन हतियारो ॥७२॥
जाको विन्दु न कबहु नासै, वलि न पलित तिहि तन परकासै ।
योगी करत खेचरीमुद्रा, तातैं बिन्दु राखि है भद्रा ॥७३॥
अष्टसिद्धि जे धारत योगी, विंदु खसै हारत ते भोगी ।
अस अति उत्तम बिंदु जु जगमैं, तिहिं तिय छीनि लेत निजभगमैं।

ज्यूं किसान बेलनमैं ऊषहि, पीरत लेत निचोरि पियूषहि ।
वार वार बेलन मैं धारहि, है असार दध्था तब जारहि ॥७५॥
त्यूं तिय भीचिं भुजनमैं पीकूं, भरत योनि-घट खींचि अमीकूं ।
पुनि पुनि करत क्रिया नित तौलौं, सेष बिंदुको बिंदु न जौलौं॥७६
कियो असार नारि नरदेहा, खींचि फुलेल फूल ज्यूं खेहा ।
भौ अकाम सब ताहि जरावै, सूके बैन मुरीर लगावै ॥७७॥
है जु सुरूप जोर धन भारी, ता नरपैं नारी बलिहारी ।
करि सुरूप धन बलको अंता, कहत ताहि तू काको कंता ॥७८॥
तिहि पुनि मिलन चहै जु अनारी, कर धरपैं धरतहु दै गारी ।
नाक चढाय आंखिहु मोरै, जाय न पति सैजहुके धोरै ॥७९॥
कोटिवज्र संघात जु करिये, सबको सार खीचि इक धरिये ।
तियके हिय सम सो न कठोरा, रिषि-मुनि-गन यह देत ढंढोरा॥८०।
करत गुमान हटत तिय ज्यूं ज्यूं, चिपटत सठमति जन मन त्यूं त्यूं
कबहुक ताको वांछित करिके, मरन अंत छोडत न पकरिके॥८१॥
पढ्यो पुरान वेद स्मृति गीता, तर्कनिपुन पुनि किनहु न जीता ।
करत अधीन ताहि तिय ऐसैं, बाजीगर बंदरकूं जैसैं ॥८२॥
सब कुछ मन भावत करवावत, पढै-पसुहि भलभांति नचावत ।
उक्ति युक्ति सब तब ही विसरै, जब पंडित पढि तियपैं ढिसरै॥८३
जब कबहु सुमरत यह वेदा, तब तियमैं मानत कछु खेदा ।
तिहिं त्यागनकी इच्छा धारै, पुनि तिय नैन सैन सर सारै ॥८४॥
जहरकटाच्छ नैनसर बोरै, तानि कमान भौंह जुग जोरै ।
मारत सारत हिय सब जनको, विर्झहूं बचत न धन सठ गनको॥८५।
भयो न तियमैं तीव्रविरागा, यूं मतिमंद करत पुनि रागा ।
करत विविध आज्ञा ज्यूं चाकर, हुकम करै बैठी मनु ठाकर॥८६॥

जे नर नार-नयन-सर बीधे, तिनके हिये होत नहीं सीधे।
भलो बुरो सुखदुख सब बिसरत, ते कैसैं भवदुखतैं निसरत ॥८७॥
नारि बुरी वेस्या अरु परकी, तीजी नरक-निसानी घरकी।
तजत विवेकी तिहूंमैं नेहा, करै नेह तिह सठमुख खेहा ॥८८॥

॥ दोहा ॥

अर्थ धर्म अरु मोछकूं, नारि बिगारत ऐन।
सब अनर्थको मूल लखि, तजै ताहि ह्वै चैन ॥८९॥

॥ पुत्रसंगदुःखवर्णन ॥

पुत्र सदा दुख देत यूं, बिन प्राप्ति दुख एक।
गर्भसमय दुख जन्म दुख, मरै तु दुःख अनेक ॥९०॥

॥ चौपाई ॥

गर्भ धरत जौलौं नहिं नारी, दुख दंपति-मन तौलौं भारी।
ह्वै जु गर्भ यह चित न नासै, पुत्री होय कि पुत्र प्रकासै? ॥९१॥
गर्भ गिरनके हेतु अनंता, तिनतैं डरत करत अतिचिंता।
ह्वै जु पूत नवमास बिहानै, जननी जनक अधिक दुख सानै ॥९२॥
नवग्रहमैं इक द्वै नहिं बिगरै, अस जनको जन्म न जग-सगरै।
बिगरै ग्रहकी निसिदिन चिंता, करत मातपितु बैठि इकंता ॥९३॥
सिसु उदास ह्वै जब तजि बोबा, तब दोऊ मिलि लागत रोबा।
यूं चिंतत कछु गये महीने, दांत पूतके निकसैं झीने ॥९४॥
मरत बाल बहु निकसत दंता, तब यह चिंता दुख तिय कंता।
जिये दूबरो दुखतैं बारो, देखि चुहारो धरत उतारो ॥९५॥
म्लेच्छ चमार चूहरे कोरी, तिनतैं झरवावत द्विज धोरी।
सइयद ख्वाजा पीर फकीरा, धोकत जोरत हाथ अधीरा ॥९६॥
जाकूं हिंदु कबहु नहिं मानै, पुत्रहेतु तिहि इष्ट पिछानै।
भैरो भूत मनावत नाना, धरत सिवाबल भूमिमसाना ॥९७॥

१ जिसके पुत्र होय २ जिसके पुत्र नहीं भया

धानकको डमरू घरि बाजै, कर जोरत पूजन नहिं लाजै।
और जंत्र तावीज घनेरै, लिखि मढवाय पूत-गर गेरै ॥९८॥

निजकुलमैं इक अच्युतपूजा, किनहु न सुपनहु सुमर्यो दूजा।
सो कुलनेम पूतहित त्याग्यो, व्यभिचारन ज्यूं जहँतहँ लाग्यो ॥९९

होत सीतलाको जव निकसन, नसत मातपितु मनकी बिकसन।
स्नानक्रिया तजि रहत मलींना, परमदेव गदहाकूं कीना ॥१००॥

मोरि वाग वकसहु सिसु मोरा, गदहा मात चराऊं तोरा।
यूं कहि चना गोदमैं धारै, विनती करि गदहाकूं चारै ॥१०१॥

अस अनंतदुखतैं सिसु पारन, जुवा होत लौं और हजारन।
उमर पूतकी ह्वैं जो थोरी; मरि है करहु उपाय करोरी ॥१०२॥

मरै मातपित कूटहिं माथा, मानि आपकूं दीन अनाथा।
हाय हाय करि निसदिन रोवैं, करि धिकधिक् निजजन्म विगोवैं

पूत मरन को ह्वै दुख जैसो, लखत सपूत अपूत न तैसो।
जो जीवै तौ होतहि तरुना, लगत नारिके पोषन भरना ॥१०४॥

जिनके अनेकयत्ननि प्रतिपारौ, तिनकूं जल प्यावन है भारौ।
रजनीसैजपैं सिखवै नारी, तव पितमात देहु मुहिं गारी ॥१०५॥

ह्वै सुपूत तौ प्रातहि उठिके, नवैं दूरतैं माथ न गठिके।
चहैं मातपित आवैं नेरै, पूत न सन्मुख आंखिहु हेरै ॥१०६॥

ह्वै कुपूत तौ उठतहिं प्राता, वचन गारिसम वकि अनुदाता।
जुदौ होय ले सव घरको धन, दे पितमातहि इक तिनका तन ॥

फेरि संभारत कवहु न तिनकूं, पोषत सवदिन तिय-निज-तनकूं।
देखि लेत पितमात उसासा, याविधि पुत्र सदा दुखरासा ॥

करि 'विचार' यूं देखियें, पुत्र सदा दुखरूप।
सुख चाहत जे पूततैं, ते मूढन के भूप ॥ १०९ ॥

॥ धनसंगदुःखवर्णन ॥

तजि तिय पूत जु धन चहै, ताके मुखमैं धूर।
धन जोरन इच्छा करन, खरच नाम दूखमूर ॥

॥ चौपाई ॥

जो चाहै माया बहु जोरी, करै अनर्थ सु लाख करोरीं।
जातिधर्म कुलधर्म सु त्यागै, जो धनकूं जोरन जन लागै ॥१११॥
विना भाग तदपि न धन जुरि हैं, जुरै तु इच्छा करि करि मरि हैं
खरचत धन घटि है यह चिंता, नासै निसिदिन ताप अनंता ॥
सदा करत यूं दुख धन मनकूं, चहै ताहि धिकधिक तिहि जनकूं।
युवति पूत धन लखि दुखदाता, तज्यो भर्छु ममताको नाता ॥

॥ कुंडलिया छन्द ॥

भर्छू बन एकांतमैं, गयो कियो चित सांत।
भयो नयो दीवान तिन, सुन्यो सकलवृत्तांत ॥
सुन्यो सकलवृत्तांत, चित्त यह उपजी ताके।
जो नृप जीवत सुनै, मिलै वा काहू नाके ॥
तौ झूठे हम होहिं, भूप दे सबकूं दण्डा।
यातैं अब मिलि कहौ, भर्छु भौ प्रेत प्रचण्डा ॥११४॥

॥ दोहा ॥

करि सलाह यह परस्पर, गये कुचहरी बीच।
सबहि कहि यह भूपतैं, भर्छु प्रेत भौ नीच ॥११५॥
राख लगाये देहमैं, मिलै जाहि बतरात।
तिहि मारत सो नर बचत, जो तिहि देखि परात ॥
सुनि भूपह निश्चय कियो, भर्छु मरी भौ प्रेत।
साचझूठ भूप न लखत, है जु प्रामद अचेत ॥११७॥

कछु दिन बीते भूप तब, मारन गयो सिकार।
पैठ्यो गिरि वनसघनमैं, जहँ मृगराज हजार।
तपत तहां इक तरुतरै, भर्छू निजदीवान॥
पेखि ताहि भाज्यो उलटि, मानि प्रेत दुखदान।

॥ इन्दव छन्द ॥

भर्छु मर्योऽरु परेत भयो यह, वाक्य असत्यहु सत्य पिछाना।
देखि लियो निज आखिन जीवत, तौहु परेत हु मानि भगाना॥
वञ्चकतैं सुनि द्वैत तथा मंति,-मैं विसवास करै जु अजाना।
ब्रह्म अद्वैत लखै परतच्छहु, तौहु न ताहि हिये ठहराना॥१२०॥

॥ दोहा ॥

भेदवचन विस्वासकरि, सुनत जु कोउ अजान॥
सो जन दुख भुगतै सदा, है न ब्रह्मको ज्ञान॥ १२ ॥
यातैं सुनै जु भेदके, वचन लखै सु असत्य।
तवही ताकूं ज्ञान है, महावाक्यतैं सत्य॥ १२२॥

॥ चौपाई ॥

सिष तैं सुनी जु भेदकहानी, जानि झूठ ते नरकनिसानी।
तिनके कहनहार सब झूठै, पुरुषारथ सुखतैं सठ रूठै॥१२३॥
तिनको सङ्ग न कबहू कीजै, है जो सङ्ग न वचन सुनीजै।
जो कहुँ सुनै तु सुनतही त्यागहु, म्लेछ जैन वच सम लखि भागहु॥
जो मिथ्या है दैसिक वेदा, कैसैं करही भवदुख छेदा?।
याको अब उत्तर सुनि लीजै, मिथ्यादुख मिथ्यातैं छीजै॥१२५॥
वेदऽरु गुरु सत्य जो होवै, तौ मिथ्याभवदुख नहिं खोवै।
यामैं इक दृष्टांत सुनाऊँ, जातैं तव सन्देह नसाऊँ॥१२६॥
सुरपति इन्द्रु स्वर्गमैं जैसो, प्रबलप्रताप भूप इक ऐसो।
भीम समान सूर बहुतेरे, तिनके चहुधा डेरे गेरे॥१२७॥

जोधा ले निजनिज हथियारन, खरै रहे तिहि द्वार हजारन।
अन्दिर मन्दिर ड्योढी ठाढे, लिये खडग कोसनतैं (म्यान) काढे ॥
ऊँचो महल अटारी जामैं, फूलसैज सोवै नृप तामैं।
पन्छी हू पौचन नहिं पावै, तहाँ और कैसे चलि जावै ॥१२९॥
तहां भूप देख्यो अस सुपना, पकर्यों पैर गादरी अपना।
भूप छुडायो चाहत निज पग, तजत न गादरि पकरि जु पगरग ॥१३०
तब राजा यूं खरो पुकारै, है को अस जो गादरि मारै।
जोधा जो ठाढे निजद्वारा, तिन रंचकहु न दियो सहारा ॥१३१॥
तब नृप दंड लियो निज करमैं, आपुहि मार्यो स्यारनि सिरमैं।
लगत दंड भौ ताको अंता, तब निसरै पगरगतैं दंता ॥१३२॥
दांत लगै गाढै नृप पगमैं, यूं लंगरात सु चालत मगमैं।
तब चाल्यो ले लाठी करमैं, पहुच्यो धावरियाके घरमैं ॥१३३॥
ताहि कह्यो फोहा अस दीजै, घाव पावको तुरत भरीजै।
घावरिया नृपतैं यह भाख्यो, फोहा नहिं तयार घर राख्यो ॥१३४॥
जो तूं दै पैसा इक मोकूं, तौ तयार करि देहूँ तोकूं।
तब उलट्यो नृप लाठी टेका, नहीं दैनकुं कौडिहु एका ॥१३५॥
लाग्यो सोच करन टरि घरतैं, बूजै बात कौन बिन जरतैं।
जो मैं होत धनी बडभागा, आवतु घर घावरिया भागा ॥१३६॥
मोहि निकम्मा जानि कंगाला, घरतैं तुरत रोग ज्यूं टाला।
याहीकूं कछु दोष न दीजै, बिनस्वारथको किहि न पतीजै ॥१३७॥
मात पिता बांधव सुत नारी, करत प्यार स्वारथतैं भारी।
जो नहिं स्वारथ सिद्धी पावै, तौ इनकूं देख्योहु न भावै ॥१३८॥
जा बिन घरी एक नहि रहते, दुख अपार बिछुरै सब लहते।
जब देखैं आयो घर पौरी, घरके मिलत भाजि भरि कौरी ॥१३९

विधि अधीन कोढी सो होवै, सब अंगनिमैं पानी चोवै।
अरु जरि परी आंगुरी जाके, भिनभिनात मुख माखी ताके ॥१४०॥
कहत ताहिं ते घरके प्यारे, मरि पापी अब तौ हतियारे।
जिहि देखत अखियां न अघानी, तिहि लखि ग्लानि वमन ज्यूं आनी
जो तिय हिय लागत पति प्यारो, किय न चहत पल उरतैं न्यारो।
ताकी पवन बचायो लौरै, भिरै जु वसन तुं नाक सकौरै ॥१४२॥
जिहि पितुमात गोदमैं लेते। सकुचत तिहि करते कछु देते।
मिलत भ्रात जो भरिभुज कोरी, सो बतरात बीच दै डोरी ॥१४३
ऐसैं जग स्वारथको सारो, विन स्वारथको काको प्यारो।
मुहिं स्वारथयोग्य न विधि कीनो, यातैं इन फोहा नहिं दीनो ॥१४४
यूं चिंतत इक मुनि तिहिं भेट्यो, तिन दै जरी घाव दुख मेट्यो।
निद्रा तैं जाग्यो नृप जबही, घाव दरद मुनि नासै तबही ॥१४५॥
सिष यह तुहि दृष्टान्त प्रकास्यो, लखि मिथ्यातैं मिथ्या नास्यो।
मिथ्यादुख देख्यो जब राजा, साच समाज न किया कछु काजा ॥
यद्यपि मिथ्या मरुथलपानी, तातैं किनहु न प्यास बुझानी।
तदपि विषम दृष्टान्त सु तेरो, सत्ताभेद दुहनमैं हेरो ॥१४७॥
समसत्ता भवदुख गुरुवेदा, यूं गुरुवेद करत भवछेदा।
आपसमैं समसत्ता जिनकी, लखि साधकबाधकता तिनकी ॥१४८
ब्रह्मभिन्न मिथ्या सब भाखौ, तिनको भेद हेतु कि हि राखौ।
उपज्यो यह मोकूं संदेहा, प्रभु ताको अब कीजै छेहा ॥१४९॥
सकल अविद्या कारज मिथ्या, सिष तामैं रंचकहु न तथ्या।
जा अज्ञानसैं उपजत जोई, ताके ज्ञान बाध तिंह होई ॥१५०॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

भगवन् ब्रह्म अज्ञानतैं, जो उपजै संसार।
सो किहि क्रमतैं होत है, कहौ मोहिं निरधार॥

॥ श्री गुरुवाच ॥

॥ चौपाई ॥

जैसे स्वप्न होत बिन क्रमतैं, त्यूं मिथ्या जग भासत भ्रमतैं।
जो ताको क्रम जान्यो लौरै, सो मरुथलजल बसन निचौरै॥१५२

॥ दोहा ॥

उपनिषनदनमैं बहुत विधि, जगउत्पत्ति प्रकार।
अभिप्राय तिनको यही, चेतनभिन्न असार॥१५३॥

॥ कवित्त ॥

जीवईस भेदहीन चेतनस्वरूप मांहि।
माया सो अनादि एक सांत ताहि मानिये॥
सत औ असततैं विलच्छन स्वरूप ताको।
ताहिकूं अविद्या औ अज्ञान हु बखानिये॥
चेतनसामान्य न विरोधी ताको साधक है।
वृत्तिमैं आरूढ वा विरोधि वृत्ति जानिये॥
मायामैं आभास अधिष्टान अरु माया मिल।
ईस सरवज्ञ जग हेतु पहिचानिये॥ १५४॥

॥ दोहा ॥

मलिनसत्त्व अज्ञानमैं, जो चेतन आभास।
अधिष्ठानयुत जीव सो, करत कर्म फल आस॥

१ स्वप्नकी मिथ्या भीख मागनेसे राजा दरिद्री नही होता

॥ कवित्त ॥

जीवनके पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार ईस ।
इच्छा होय जीव भोग जग उपजाईये ॥
नभ वायु तेज जल भूमि भूत रचै तहां ।
शब्द स्पर्श रूप रस गंध गुन गाईये ॥
सत्वअंस पंचनको मेलि उपजत सत्व ।
रजोगुनअंस मिलि प्रान त्यूं उपाईये ॥
एक एक भूत सत्वअंस ज्ञान-इन्द्रि रचै ।
कर्मइन्द्रि रजोगुनअंसतैं लखाईये ॥१५६॥

॥ सवैया छंद ॥

भूतअपंचीकृत औ कारज, इतनी सूछमसृष्टि पिछान ।
पंचीकृत भूतनतैं उपज्यो, स्थूलपसारो सारो मान ॥
कारन सूछम थूल देह अरु, पंचकोस इनहीमैं जान ।
करि विवेक लखि आतम न्यारो, मुंज इषीकातैं ज्यूं भान ॥१५७॥
स्थूलदेहको भान न होवै, स्वप्नमांहि लखि आतम ज्ञान ।
सूछमज्ञान सुषुप्ति समै नहिं, सुखस्वरूप ह्वै आतम भान ॥
भासै भये समाधि अवस्था, निरावरनै आतम नअज्ञान ।
एसै तीनि देह व्यभिचारी, आतम अनुगत न्यारो जान ॥१५८॥
पंचकोसतैं आतम न्यारो, जानि सु जानहु ब्रह्मस्वरूप ।
तातैं भिन्न जु दीखे सुनिये, सो मानहु मिथ्या भ्रमकूप ॥
मिथ्या अधिष्ठान न बिगारै, स्वप्नभीख न दरिद्री भूप ।
सब कुछ कर्त्ता तऊ अकर्त्ता, तव अस अद्भुतरूप अनूप ॥१५९॥

॥ इन्दव छंद ॥

नाहिं खपुष्पसमान प्रपंच तु, ईस कहा करता जु कहावै ।
साछ्य नहीं इम साछिस्वरूप न, दृश्य नहीं दृक काहि जनावै ॥

वंधुहुं होई तु मोछ बनै अरु, होय अज्ञान तु ज्ञान नसावै ।
जानि यही करतव्य तजै सव, निश्चल होतहि निश्चल पावै ॥१६०॥

॥ दोहा ॥

यही चिन्ह अज्ञानको, जो मानै कर्त्तव्य ।
सोई ज्ञानी सुघरनर, नहिं जाकूं भवितव्य ॥ १६१ ॥

॥ इन्दव छंद ॥

एक अखंडित ब्रह्म असंग, अजन्म अदृश्य अरूप अनामैं ।
मूलअज्ञान न सूछमथूल, समष्टि न व्यष्टिपनो नहिं तामैं ॥
ईस न सूत्र विराट न प्राज्ञ न, तैजस विस्वस्वरूप न जामैं ।
भोग न जोग न वंध न मोच्छ, नहिं कछु वामैं रु है सव वामैं ॥
जाग्रतमैं जु प्रपंच प्रभासत, सो सव बुद्धि विलास बन्यो है ।
ज्यूं सुपनेमहिं भोग्य न भोग, तऊं इक चित्र विचित्र जन्यो है ॥
लीन सुषूपतिमैं मति होतहि, भेद भगै इकरूप सुन्यो है ।
बुद्धि रच्यो जु मनोरथमात्रसु, निश्चल बुद्धि प्रकास भन्यो है१६३

॥ सवैया छंद ॥

जाके हिय ज्ञानउजियारो, तम अंधियारो खरो विनास ।
सदा असंग एकरस आतम, ब्रह्मरूप सो स्वयंप्रकास ॥
ना कछु भयो न है नहिं ह्वै है, जगत मनोरथ मात्र विलास ।
ताकी प्राप्ति निवृत्ति न चाहत, ज्यूं ज्ञानी के कोउ न आस ॥
देखै सुनै न सुनै न देखै, सव रस गहै रु लेत न स्वाद ।
सूंघि परसि परसै न न सूंघै, बैन न बोलै करै विवाद ॥
ग्रहि न ग्रहै मल तजै न त्यागै, चलै नहीं अरु धावत पाद ।
भोगैं युवति सदा सन्यासी, सिष लखि यह अद्भुत संवाद॥१६५॥

निजविषयनमैं इन्द्रिय वर्ते, तिनतैं मेरो नाहिं संग।
मैं इन्द्रिय नहिं मम इन्द्रिय नहिं, मैं साक्षी कूटस्थ असंग ॥
त्यागहु विषय कि भोगहु इन्द्रिय, मोकूं लगै न रंचक रंग।
यह निश्चय ज्ञानीको जातैं, कर्त्ता दीखै करै न अंग ॥१६६॥

माटीको कारज घट जैसै, माटी ताके बाहरि मांहि।
जलतैं फैन तरंग बुद्बुदा, उपजत जलतैं जुदे सु नाहिं ॥
ऐसै जो जाको है कारज, कारनरूप पिछानहु ताहि।
कारन ईस सकलको "सोमैं" लयचिंतन जानहु विध याहि ॥
ध्यान अहंग्रह प्रनवरूपको, कह्यो सुरेश्वर श्रुति अनुसार।
अच्छर प्रनव ब्रह्म ममरुप सु, यूं अनुलव निजमति गति धार ॥
ध्यानसंमान आन नहिं याके, पंचीकरन प्रकार विचार।
जो यह करत उपासन सो मुनि, तुरत नसै संसार अपार ॥१६८
जो यह निर्गुन ध्यान न ह्वै तौ, सगुन ईस करि मनको धाम।
सगुन उपासनहू नहि ह्वै तौ, करि निष्कामकर्म भजि राम ॥
जो निष्कामकर्महू नहीं ह्वै तौ करिये सुभकर्महू सकाम।
जो सकामकर्महू नहीं होवै, तौ सठ वारवार मरि जाम ॥१६९॥

॥ दोहा ॥

ओंकारको अर्थ लखि, भयो कृतार्थ अदृष्ट।
पढै जु याहि तरंग तिहि, दादू करहू सुदृष्टि ॥१७०॥

इति श्री विचारसागरे गुरुवेदादिव्यावहारिक प्रतिपादन मध्यमाधिकारी-साधनवर्णन नाम पंचम स्तरंगः समाप्तिः ॥ ५ ॥

षष्ठतरंगः

॥ अथ श्रीगुरुवेदादि-साधन-मिथ्या-वर्णनम् ॥

—:०:—

॥ दोहा ॥

चेतन भिन्न अनात्म सब, मिथ्या स्वप्नसमान।
यूं सुनि बोल्यो तीसरो, तर्कदृष्टि मतिमान ॥ १ ॥
पहिली जानै वस्तुकी, स्मृति स्वप्नमैं होय।
जाग्रत मैं अज्ञात अति, ताहि लखै नहीं कोय ॥२॥
अथवा स्थूलहि लिंग तजिं, बाहरि देखत जाय।
गिरि समुद्र वन बाजि गज, सो मिथ्या किहिं भाय ॥३॥
यह हस्ती आगे खरो, ऐसो होवै ज्ञान।
स्वप्नमांहि स्मृतिरूप सो, कैसे होय सुजान ॥ ४ ॥
बाहरि लिंग जु निकसै, देह अमंगल होय।
प्रानसहित सुन्दर लसै, यातैं लिंगहि जोय ॥ ५ ॥
यातैं अंतर ऊपजै, त्रिपुटी सकल समाज।
वेद कहत या अर्थकूं, सब प्रमान सिरताज ॥६॥
साधन सामग्री बिना, उपजै झूठ सु होय।
बिन सामग्री ऊपजै, यूं तिहि मिथ्या जोय ॥ ७ ॥

॥ चौपाई ॥

बिन सामग्री उपजत यातैं, स्वप्नसृष्टि सब मिथ्या तातैं।
देसकाल को लेस न जामैं, सर्व जगत उपजत है तामैं ॥८॥

स्वप्न समान झूठजग जानहु, लेस सत्य ताकूं मति मानहु।
जाग्रतमांहि स्वप्न नहि जैसैं, स्वप्नमांहिं जाग्रत नहिं तैसैं ॥ ९ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ दोहा ॥

लाख हजारन कल्पको, यह उपज्यो संसार।
तामैं ज्ञानी मुक्त ह्वै, वंधे अज्ञ हजार ॥१०॥

झूठो स्वप्नसमान जो, छनेघटिका ह्वै जाम।
वद्ध कौन को मुक्त है, श्रवणादिक किह काम ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवकूं स्वप्नमैं भ्रम उपज्यो जिहि रीति।
सिष तो कूं यह ऊपजी, बंधमोछ परतीति ॥१२॥

जा विभु सत्य प्रकासतैं, परकासत रवि चंद ॥
सो साक्षी मैं बुद्धिको सुद्धरूप आनंद ॥ १ ॥

नासै विघ्न समूलतैं, श्रीगणपतिको नाम।
जा चितन बिन ह्वै नहीं, देवनहू के काम ॥ २ ॥

॥ सोरठा ॥

असुरनको संहार, लछमी पारवतीपती।
तिन्हें प्रनाम हमार, भजतनकूं संतत भजै ॥ ३ ॥

जा सक्तीकी सक्ति लहि, करै ईस यह साज।
मेरी वानी मैं वसहु, ग्रंथ सिद्धिके काजि ॥ ४ ॥

बंधहरन सुख करन श्री, दादू दीनदयाल।
पढै सुनै जो ग्रंथ यह, ताके हरहु जंजाल ॥५॥

॥ कवित्व ॥

वेदवादवृच्छ वन, भेदवादीवायु आय।
पकर हलाय क्रिया, कंटक पसारिके॥
सरल सुसुद्ध सिष्य, कंज पुनि तोरि गेरि।
सूलनमैं फेरत, फिरत फेरि फारिके॥
पेखी सु पथिक भगवान जानि अनुचित॥
अंकमैं उठाय ध्याय, व्यासरूप धारिके।
सूत्रिको बानइ जाल, बनको विभाग कीन्ह।
करत प्रनाम ताहि, निश्चल पुकारिके॥६॥

॥ दोहा ॥

कोउक शिष्य उदारमति, गुरुके सरनै जाई।
प्रश्न कियो कर जोरिके, पाद-पद्म सिर नाइ॥७॥

॥ शिष्य उवाच ॥

भो भगवन् मैं कौन यह, संसृति कातैं होइ।
हेतु मुक्ति को ज्ञान वा, कर्म उपासन दोइ॥८॥

॥ गुरुरुवाच ॥

॥ दोहा ॥

सत् चित् आननंद एक तूं, ब्रह्म अजन्म असङ्ग।
विभु चेतन माया करै, जगको उत्पत्ति भङ्ग॥ ६॥
हेतु मोक्षको ज्ञान इक, नहीं कर्म नहीं ध्यान।
रज्जुसर्प तबही नसै, होय रज्जुको ज्ञान॥ १०॥
सिष्य कह्यो जो तोहिं मैं, सर्व वेदको सार।
लहै ताहि अनयासही, संसृति नसै अपार॥११॥

लघु गुरु गुरु लघु होत है, वृत्ति हेतु उच्चार।
रू ह्वै अरुकी ठौरमैं, अवकी ठौर वकार ॥
संयोगी ज्ञ न क पर ख न, नहीं टवर्ग णकार।
भाषामैं ऋ ऌ ॡ नहीं, अरु तालव्य शकार ॥

॥ कवित्त ॥

दीनताकूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि।
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्यको प्रकासी है ॥
आपनै अज्ञानतैं जगत सब तूही रचै।
सर्वको संहार करै आप अविनासी है ॥
मिथ्या परपंच देखि दुःख जिन आनि जिय।
देवनको देव तू तौ, सब सुखरासी है ॥
जीव जग ईस होय, मायासैं प्रमासैं तूहि।
जैसैं रज्जु साप सीप, रूप ह्वै प्रभासी ह्वै ॥ १२ ॥

रागजारि लोभहारि द्वेष मारि मार वारि।
वारवार मृगवारि पारवार पेखिये।
ज्ञानभानु आनि तम, तम तारि भागत्याग।
जीव सीव भेद छेद वेदन सु लेखिये ॥
वेदको विचार सार, आपकूं संभारियार।
टारि दासपास आस, ईसकी नु देखिये ॥
निश्चल तू चलन अचेल, चलदेल छेल।
नभ नील तल मल तासूं न विसेखिये ॥ १३ ॥

॥ दोहा ॥

जाकूं उपमा दीजिये, सो उपमेय बखानि।
जाकी उपमा दीजिये, सो कहिये उपमानि ॥ ३ ॥

॥ कवित्व ॥

बंध मोच्छ गेह देहवान ज्ञानवान जान।
रागु रु विराग दोइ धजा फररात है ॥
विषैविषै सत्यभ्रम भ्रम मति वात तात।
हललात प्रात रात घरी न ठहरात है ॥
साद्य साच्ची पूतरी अनूंजरी रु ऊंजरी द्वै।
देखि रागी त्यागी ललचात जन जात है ॥
चंचल अचल भ्रम ब्रह्म लखि रूप निज।
दुःखकूप आनन्द स्वरूपमैं समात है ॥१४॥

॥ दोहा ॥

त्रिविध लच्छना कहत हैं कोविद बुद्धिनिधान।
जहती अरु अजहती पुनि, भाग त्याग जिय जान॥१५॥
आदि दोइ नहिं संभवै, महा वाक्य मैं तात।
भाग त्याग तैं रूप निज, ब्रह्म रूप दरसात ॥ १६ ॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ शंकर छंद ॥

अब लच्छना प्रभु कहत काकूँ, देहु यह समुझाय।
पुनि भेद ताके तीनि तिनके, लछनहु दरसाय ॥ १७ ॥

॥ गुरुवाक्य ॥

॥ शंकर छंद ॥

श्रुति चित निज एकाग्र करि, अब सिष्य सुनि मम बानि ॥
ज्यूं लच्छना अरु भेद ताके, लेहु नीके जानि ॥
सुनि वृत्ति है द्वै भांति पदकी, सक्ति तामैं एक ॥
तहां लच्छना पुनि जानि दूजी, सुनहु सो सविवेक ॥ १८ ॥

॥ शक्ति लच्चण ॥

॥ दोहा ॥

या पदे तें या अर्थ की, ह्वै सुनतेहि प्रतीति ।
ऐसी इच्छा ईसकी, सक्ति न्याय की रीति ॥ १९ ॥

॥ अर्ध शंकर छंद ॥

सामर्थ्य पदकी शक्ति जानहु, वेदमत अनुसार ।
सो वह्निमैं जिम दाहकी है सक्ति त्यूँ निरधार ॥२०॥

॥ शिष्य उवाच ॥

॥ शंकर छंद ॥

ननु वह्निमैं नहिं सक्ति भासै, वह्नि विन कछु और ।
है हेतुता जो दाहकी, सो वह्निमैं तिहिं ठौर ॥
इम पदनहुमैं वर्णविन कछु, सक्ति भासत नाहिं ।
याहेतुतैं जो ईसईच्छा, सक्ति मो मतिमाहिं ॥ २१ ॥

॥ गुरुरुवाच ॥

॥ शंकर छन्छ ॥

प्रतिबंध होते वह्नितैं नहिं, दाह उपजै अंग ।
उत्तेजक रु जब धरै तब, फिरि दहै वन्हि स्वसंग ॥
है वन्हिमैं जो हेतुता, तौ दाह है सब काल ।
जो नसै उपजै वन्हि होते, हेतु सक्ति सु बाल ॥२२॥

॥ गुरु वाक्य ॥

॥ अर्थ शंकर छंद ॥

सिष रीति यह सबवस्तु में तूं, सक्ति लेहु पिछानी ।
विनसक्ति नहिं कछु काज होवै यहै निश्चै मानी ॥२३॥

अब शक्ति यामैं है नहिं वह, शक्ति उपजी और।
यह शक्ति को परसिद्ध अनुभव, लोपिहै किस ठौर ॥२४॥
जो शक्ति इच्छा ईशकी सो, पदनके न नजीक।
मत न्याय को अन्याय या विधि शक्ति जानि अलीक॥२५॥
योग्यता जो अर्थकी पदमांहि, शक्ति सु देखि।
यूं कहत वैयाकरणभूषन, कारिका हरि लेखि॥२६॥

॥ गुरु वाक्य ॥

॥ सार्ध शंकर छंद ॥

सुनि शिष्य वैयाकरनमतमैं, प्रबलदूषन एक।
सामर्थ्य पदमैं है न वा यह, पूछ ताहि विवेक॥
भाखै जु है तौ शक्ति मानहु, ताहि लोकप्रसिद्ध।
कहि नाहि जो असमर्थ पदसो, योग्य है यह सिद्ध।
असमर्थ है पद अर्थ योग्य रु, कहतही सविरोध।
जो और दूषन देखनो तौ, ग्रंथ दर्पन सोध॥२४॥
संबंध पदको अर्थसैं तादात्म्य शक्ति सु वेद।
इम भट्टके अनुसारि भाखत, ताहि भेदाभेद॥२९॥
यहॐ अक्षर ब्रह्म है यूं, कहत वेद अभेद।
पुन बानिमैं पद अर्थ बाहरि, देखियत यह भेद॥
जो गुनगुनी औ जाति व्यक्ति, क्रिया अरु तद्वान।
संबंध लखि तादात्म्य इनको कार्यकारणसान॥३१॥

+ गुण रूपरस गंध आदिक गुण है तिन्का आश्रय पृथ्वी आदि गुनी

॥ दोहा ॥

एक वस्तुको एकमैं, भेदअभेद विरुद्ध।
जुक्तिजुक्त यातैं कहत, यह मत सकल अशुद्ध॥३२॥

प्रनववर्न अरु ब्रह्मको, कह्यो जु वेद अभेद।
तामैं अन्य रहस्य कछु लख्यो न भट्ट सु भेद ॥३३॥
है पदमैं जा अर्थकी, शक्ति सक्य सो जानि।
वाच्यअर्थ पुनि कहत तिहि,वाचकपद हि पिछानि

॥ कवित्त ॥

सक्यको संबंध जो स्वरूप जानि लच्छनको।
लच्छना सो भान जाको लच्छ सु पिछानिये ॥
वाच्य अर्थ सारो त्यागि, वाच्यको संबंध जहां।
होई परतीति तहां, जहती बखानिये ॥
वाच्यजुत वाच्यके संबंधीका जु ज्ञान होय।
ताहि ठौर लच्छना अजहतीहि मानिये ॥
एक वाच्य भागत्याग होत तहां भागत्याग।
दूजो नाम जहती अजहती प्रमानिये ॥

॥ दोहा ॥

सर्वशक्ति सर्वज्ञ विभु, ईस स्वतन्त्र परोच्छ।
मायी तत्पद वाच्य सो, जामैं बंध न मोच्छ ॥३६॥
कहे धर्म जो ईशके, सव तिनतैं विपरीत।
है जिहि चेतन जीव तिहि, त्वंपदवाच्य प्रतीत ॥३७॥
महावाक्यमैं एकता, है दोनोंकी भान।
सो न बनै यातैं सुमति, लच्छय लच्छनहिं जान ॥३८॥
आदि दोय नहि संभवैं, महावाक्यमैं तात।
भागत्याग यातैं लखहु, है जातैं कुसलात ॥३९॥
ज्ञेय जु साक्षी ब्रह्मचित् वाच्यमांहि सो लीन।
मानैं जहती लच्छना, है कछु ज्ञेय नवीन ॥४०॥

वाच्यहु सारो रहतहै, जहां अजहती मींत।
वाच्यअर्थ सविरोध यूं, तजहु अजहती रीत ॥४१॥
त्यागि विरोधीधर्म सब, चेतन शुद्ध असंग।
लखहु लच्छनातैं सुमति, भागत्याग यह अंग ॥४२॥

॥ कवित्त ॥

"गंगामैं ग्राम" जहतिलच्छना या ठौर लखि।
"सोन धावै" लच्छना अजहति जनाईये॥
"सोई यह वस्तु" इहां लच्छना है भागत्याग।
दूजो नाम जहति अजहति सुनाईये॥
"तत्त्वमसि" आदि महावाक्यनमैं भागत्याग।
लच्छना न जहति अजहति बताईये॥
ब्रह्म काहु पदको न वाच्य यूं बखानै वेद।
यातैं सर्वपदनमैं रीति यूं लखाईये ॥४३॥
मायामांही सत्यता जु औरभांति भाखियत।
ब्रह्ममांहि सत्यता सु औरभांति भाखिये॥
दोउ मिली सत्यपद वाच्य मुनि भाखत हैं।
ब्रह्ममांहि सत्यता सु लच्छ्यभाग राखिये॥
बुद्धि वृत्तिसंवित द्वै मिले ज्ञानपद वाच्य।
संवित स्वरूप लच्छ्य बुद्धिवृत्ति नाखिये॥
आत्म औ विषेको सुख वाच्यपद आनंदको।
विषैसुख त्यागि आत्मसुख लच्छ्य आखिये ॥४४॥

॥ दोहा ॥

एकहि पदमैं लच्छना, मानैं नहीं विरोध।
दोयपदनमैं लच्छना, निष्फल कहत सुबोध ॥४५॥

॥ कवित्त ॥

लच्छना जो कहैं एक पद मांहि ताकूँ यह ।
पूछि दोय पदनमैं कौनसै मैं लच्छना ॥
प्रथम वा द्वितीयमैं कहै ताहि भाखि यह ।
वाक्यनको होयगो विरोध मूढलच्छना ॥
तीनिवाक्य मध्य जीववाचक प्रथमपद ।
"तत्त्वमसि" वामैं आदिपद ईशलच्छना ॥
प्रथम वा द्वितीयको नेम नहिं बनै यातैं ।
भाखत द्वै पदनमैं लच्छना सुलच्छना ॥ ४६ ॥

॥ दोहा ॥

ईसपदहि लच्छक कहै, सब अनर्थ की खानी ।
ज्ञेय होय श्रुतिवाक्यमैं, ह्वै पुरुषार्थ हानि ॥ ४७ ॥
साक्षी त्वंपद लछ्य कहु, कैसे ईसस्वरूप ।
यातैं दोपद लच्छना, भाखत जतिवर भूप ॥ ४८ ॥
तत्त्व त्वं तत रीति यह, सब वाक्यन मैं जानि ।
जातैं होय परोछता परिच्छिन्नता हानि ॥ ४९ ॥
जीवब्रह्मकी एकता, कहत वेद स्मृति बैन ।
शिष्य तहां पहिचानिये, भागत्याग की सैन ॥ ५० ॥

॥ दोहा ॥

अस सिष गुरु उपदेश सुनि, भौ तत्कालनिहाल ।
भलै विचारै याहि जो, ताके नसत जंजाल ॥५१॥

॥ सोरठा ॥

मिथ्यागुरु सुखानि, कियो ग्रंथ उपदेश यह ।
सुनत करत तमहानि, यह ताकि भाषा करी ॥ ५२ ॥

॥ दोहा ॥

अगृधदेवकूं स्वप्नमैं, यह किय गुरु उपदेश।
नस्यो न तहु दुखमूल वह, मिथ्या बनको वेस ॥ ५३ ॥

॥ चौपाई ॥

भगवन यह तुम ग्रंथ पढायो, अर्थ सहित सो मो हिय आयो।
बनदुख मूल तऊ मुहि भासै, कहु उपाय जातैं यह नासै ॥ ५४ ॥
बोले गुरु सुनि सिषकी बानि, सुनि सिष है जातैं बनहानी।
अस उपाय को और नहीं है, बनका नासक हेतु यही है ॥ ५५ ॥
महावाक्य को अर्थ विचारहु, "मैं अगृध" यूंह टेरि पुकारहु।
सुनि पुनि वाक्य विचारे चेला, "महं अगृध" यह दीनो हेला ॥५६॥
निद्रा गई नैन परकासे, बन गुरू ग्रन्थ सबै वह नासे।
भयो सुखी वनदुख बिसरायो, हुतो अगृध निजरूप सु पायो

॥ दोहा ॥

अगृधदेवमैं नींदतैं; भौ बनदुख जिहि रीति।
आतममैं अज्ञानतैं त्यूं जगदुःख प्रतीति ॥ ५८ ॥
ज्यूं मिथ्या गुरु ग्रन्थतैं, मिथ्या वन संहार।
त्यूं मिथ्या गुरु वेदतैं, मिथ्या जग परिहार ॥ ५९ ॥
लच्छ-यअर्थ लखि वाक्यको, है जिज्ञासु निहाल।
निरावरन सो आप है, दादू दीनदयाल ॥ ६० ॥

सप्तमस्तरंगः

जीवन्मुक्ति–विदेहमुक्ति वर्णन

—:o:—

॥ दोहा ॥
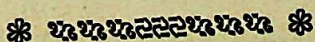
उत्तम मध्य कनिष्ठ तिहुँ, सुनि अस गुरुउपदेश ।
ब्रह्म आत्म उत्तम लख्यो, रह्यो न संसै लेस ॥ १ ॥
भ्रमन करत ज्यूं पवनतैं, सूको पीपरपात ।
सेष कर्म प्रारब्धतैं, क्रिया करत दरसात ॥ २ ॥
कबहुक चढ़ि रथ बाजि गज, बागबगीचे देखि ।
नग्नपाद पुनि एकले, फिर आवत तिहिं लेखि ॥ ३ ॥
विविध वेष सज्या सयन, उत्तमभोजन भोग ।
कबहुक अनसन गिरि गुहा, रजनि सिला संयोग ॥ ४ ॥
करि प्रनाम पूजन करत, कहुँ जन लाख हजार ।
उभै लोकतैं भ्रष्ट लखि, कहत कमिं धिक्कार ॥ ५ ॥
जो ताकी पूजा करत, संचित सुकृत सु लेत ।
दोषदृष्टि तिहि जो लखै, ताहि पापफल देत ॥ ६ ॥
एसै ताके देहको, विना नियम व्यवहार ।
कबहु न भ्रम संदेह, है, लह्यो तत्त्वनिर्धार ॥ ७ ॥
नहि ताकूं कर्त्तव्य कछु, भयो भेदभ्रम नास ।
उपज्यो वेदप्रमानतैं, अद्वय ब्रह्मप्रकाश ॥ ८ ॥

ज्ञानीके व्यवहारमैं, कोऊ कहत है नेम।
त्रिपुटि तजैदुःख हेतु लखि, लहै समाधि सप्रेम ॥ ९॥
है किञ्चित व्यवहारजो, भिच्छअसन जलपान।
भूलै नांहि समाधिसुख, है त्रिपुटि तैं ग्लान ॥१०॥
लहै प्रयत्न समाधिको, पुनि ज्ञानी इह हेत।
जोसमाधिसुख तजि भ्रमत, नरकूकर खरप्रेत ॥११॥
गौड़पादमुनि कारिका, लिख्यो समाधिप्रकार।
ज्ञानी तजि विच्छेपयूं, लहै सकल सुखसार ॥१२॥
अष्ट अङ्ग विन होत नहिं, सो समाधि सुख मूल।
अ अङ्ग ते अवसुनो, जे समाधि अनकूल ॥१३॥
पांच पांच यम नियम लखि, आसन बहुत प्रकार।
प्रानायाम अनेक विधि, प्रत्याहार विचार ॥१४॥
छठो धारना ध्यान पुनि, अरु सविकल्पसमाधि।
अष्ट अङ्ग ये साधिके, निर्विकल्प आराधि ॥१५॥
सुनि समाधि कर्त्तव्यता, तत्त्वदृष्टि हसि देत।
उत्तर कछु भाखत नहीं,लखि तिहि वकत सप्रेत ॥१६॥
भ्रमन करत कछु कालयूं, तत्त्वदृष्टि सुज्ञान।
भोगै निज प्रारब्ध तव, लीन भये तिहिं प्रान ॥१७॥
दूजो सिष्य अदृष्टि तिहि, गङ्गातट सुभथान।
देस इकंत पवित्र अति, कियो ब्रह्मको ध्यान ॥१८॥
सास्त्ररीति तजि देहकूं, पूरब कह्यो जु राह।
जाय मिल्यो सो ब्रह्मतैं, पायो अधिक उछाह ॥१९॥
तर्कदृष्टि पुनि तीसरो, लहि गुरुमुखउपदेश।
अष्टादसप्रस्थान जिन, अवगाहन करि बेस ॥२०॥

न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्र (अष्टादशप्रस्थान)-चारवेद, षट्अंग, पुराण, उपवेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थवेद, ज्योतिष-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, पिंगल, छंद, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र

जेति बानी वैखरी, ताको अलं पिछान।
हेतु मुक्तिको ज्ञान लखि, अद्वयनिश्चय ज्ञान॥२१॥

सुनिप्रसिद्ध विद्वान पुनि, मिल्यो आप तिहि जाय।
निश्चय अपनो ताहि तिहि, दीनो सकल सुनाय॥२२॥

तर्कदृष्टिके बैन सुनि, सो बोल्यो बुधसंत।
जो मोसूं तैं यह कह्यो, सोइ मुख्य सिद्धान्त॥२३॥

संशय सकल नसाय यूं, लख्यो ब्रह्म अपरोक्ष।
जग जान्यो जिन सब असत, तैसैं बंध रु मोक्ष॥२४॥

सेष रह्यो प्रारब्ध यूं, इच्छा उपजी येह।
चलि तत्कालहि देखिये, जननिजनक जुतगेह॥२५॥

पुत्र गये लखि गेहतैं, पितु चित उपज्यो खेद।
सूनो राज न तिनि तज्यो, नहिं यथार्थ निर्वेद॥२६॥

॥ चौपाई ॥ तीव्रवैराग्यनही मंद वैराग्य

सुभसंतति पितु सो वडभागा, भयो प्रथम तिहि मन्दविरागा।
जिज्ञासा उपजी यह ताकूं, देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं॥ २७॥

पंडित निरनो करन बुलाये, यथा योग्य आसन बैठाये।
प्रश्न कियो यह सबके आगै, असको देव न सोवै जागे॥ २८॥

पुरुषारथ हित जन जिहि जाचै, भक्तिमानके मनमैं राचै।
सुनि यह पृथिवीपतिकी वानी, इक तिनमैं बोल्यो सुज्ञानी॥२९॥

सुन राजा तुहि कहूं सु देवा, शिव विरञ्चि लागे जिहि सेवा।
सङ्ख चक्र धारी हितकारी, पद्म गदा धर परउपकारी॥ ३०॥

मङ्गलमूर्ती विस्नु कृपालू, निज सेवक लखि करत निहालू।
शक्ति गणेश सूर शिव जे हैं, सब आज्ञा ताकी मैं ते हैं॥३१॥

भारत सकलग्रंथ यह भाखै, पद्मपुरान तापनी आखै।
विस्नुरूपतैं उपजत सबही, परैं भीर जाचैं तिहि तवही ॥३२॥

[तापनीनृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी उपनिषद् ।]

विविधवेषको धरि अवतारा, सब देवनकूं देत सहारा।
यातैं ताकी कीजे पूजा, विस्नुसमान सेव्य नहिं दूजा ॥३३॥
विस्नु भक्त शिव उत्तम कहिये, तथापि सेव्य स्वरूप न लहिये।
रूप असंगल सिवको सबसम, ध्यान करैं नहिं ताको यूं हम ॥
राख डमरु गजचर्म कपाला, धरै आप किहिं करै निहाला।
ताको पूत गनेस हु तैसो, रूप विलच्छन नरपसु जैसो ॥३५॥
सठ हठतैं ध्यावत जो देवी, तासमरूप धरत तिहिं सेवी ॥
तिय निंदित असुची न पवित्रा, औगुन गिनैं न जात विचित्रा ॥
कपट कूटको आकर कहिये, पराधीन निज तंत्र न लहिये।
ऐसो रूप जु चहिये जाकूं, सो सेवहु नर खरसम ताकूँ ॥ ३७ ॥
भ्रमत फिरै निसदिन यह भानू, रहत न निश्चल छन इक थानू।
भ्रमतौ फिरै उपासक ताको, तिहि समान सेवक जौ जाको ॥३८॥
आन देव यातैं सब त्यागै, सेवनीय इक हरि नित जागै।
पूजन ध्यान करन विधि जो है, नारदपंचरात्रमैं सो है ॥३९॥
सिवसेवक सुनि मुनि तिहि बैना, क्रोध सहित बोल्यो चल नैना।
सुन राजन बानी इक मोरी, जामैं वचन प्रमान करोरी ॥४०॥
सिवसमान आन को कहिये मांगै देत जाहि जो चहिये।
सब विभूति हरिकूं दै मांगी, धरत विभूति आप नितत्यागी ॥
चर्म कपाल हेतु इहि धारै, सम नहिं उत्तम अधम विचारै।
नग्न रहत उपदेसत येहीं, नहिं विरागसम सुख है केही ॥४२॥
सदावर्त ऐसो दे भारी, कासीपुरी मरे नरनारी।
सो सायुज्यमुक्तिकूं जावै, गर्भवाससंकट नहिं पावै ॥ ४३ ॥

सिवसमान नरनारी ते सब, लहत सु दिव्यभोग सगरे तब।
करत आप अद्वय-उपदेशा, तजत लिंग यूं ब्रह्मप्रवेसा ॥४४॥
ऊचनीच रंचहु नहिं देखै, मुक्ति सबनकूं दै इक लेखै।
सिवसमान राजन को दाता, भक्त अभक्त सबनको त्राता ॥४५॥
विस्नुसुभाव सुन्यो हम ऐसो, जगमैं जन प्राकृत ह्वै तैसो।
त्राता भक्त अभक्त न त्राता, यह प्रसिद्ध सबजगमैं नाता ॥४६॥
हरिसेवक हर सेव्य बखान्या, रामचंद्र रामेश्वर मान्यो।
स्कंदपुरान व्यास बहु भाख्यो, हरिसेवक हर सेव्याहि राख्यो।
कह्यो जु भारत पद्मपुराना, सब देवनतैं हरि अधिकाना।
भारततातपर्य नहिं देख्यो, जो अप्पयदीछित बुध लेख्यो ॥४८॥
शिव सबको प्रतिपाद्य बखान्यो, भक्तनमैं उत्तम हरि गान्यो।
ईस देव पढ सबमैं कहिये महत सहित इक सिवमैं लहिये ॥४५॥
सिवतैं भिन्न असिव जो कहिये, तिहि तजि सब कल्यानहि लहिये
जलसायी जिहिं नाम बखान्यो, सो जागै यह मिथ्या गान्यो ॥
विख लख जब सबकूं उपज्यो डर, निर्भय किये सकल गर धरि गर
जाको पूत गनेस कहावै, विघ्नजाल तत्काल नसावै ॥ ५१ ॥
कारजमैं कारन गुन होवै, यूं सिव विघ्न मूलतैं खोवै।
जन्ममरन दुःख विघ्न कहावै, तिहिं समूल सिवध्यान नसावै ॥
सेवनयोग्य सदासिव एका, जागै सहित समाधि विवेका।
तंत्र पासुपत रीति जु गावै, त्यूं पूजनकरि ध्यान लगावै ॥५३॥
नारदपंचरात्रमत झूठो, यह परिमल परसंस अनूठो।
यातैं सिव सेवा चित लावै, पुरुषारथ जो चहै सु पावै ॥५४॥
सिवको पूत गनेस बतायो, कारनगुन कारजमैं गायो।
सुनि गनेसको पूजक बोल्यो, अस किय कोप सिंहासन डोल्यो।
राजन सुन दोनूं ये झूठै, बचन सत्य सम कहत अनूठे।
सिवको पूत गनेस बतावै, पराधीनता तामैं गावै ॥ ५६ ॥

कहुँ प्रसङ्ग सुनहु इक ऐसो, लिख्यो व्यासभगवत मुनी जैसो।
चढे त्रिपुर मारनकूं सारै, हरिहर सहित देव अधिकारै ॥ ५७ ॥
नहिं गनेसको पूजन कीनो, त्रिपुर न रञ्चहु तिनतैं छीनो।
पुनि पछिताय मनाय गनेशा, त्रिपुर विनास्यो रह्यो न लेसा ॥
भये समर्थ किये जिहि पूजा, सेवनयोग्य सु इक नहिं दूजा।
रामपूत दसरथको जैसे, विघ्नहरन सिवको सुत तैसे ॥ ५९ ॥
ब्यास गनेसपुरान बनायो, सबको हेतु गनेस बतायो।
हरिहर विधि रवि शक्ति समेता, तुंडीतैं उपजत सब तेता ॥६०॥
करत ध्यान जिहि छन जन मनमैं, नासत विघ्न प्रधान गननमैं।
विघ्नहरन यूं जगत निसदिन, भक्ति सहित सेवहु तिहि अनछन॥
हेतु गनेश शक्ति को सुनिके, भगतभागवत उचर्‍यो गुनिके।
सुन राजन बानी मम साची,तीनूं सकल कहत ये काची ॥ ६२ ॥
सूने देव शक्तिबिन सारे, मृतक देहसम लखि हत्यारे।
शक्तिहीन असमर्थ कहावै, सो कैसे कारज उपजावै ॥ ६३ ॥
जिन बहु सक्तिउपासन धारी, तातैं भये सकल अधिकारी।
हरि हर सूर गनेस प्रधाना, तिनमैं शक्ति देखियत नाना ॥६४॥
सक्ति लोकमैं भाखत जाकू, रूप भगवतीको लखि ताकूं।
लाख करोरि मात्रिका गन पुनि,तंत्रग्रंथ लखि अस सकलगुनि ॥
काली ताको अंस प्रधाना, माहेश्वरी आदि नाना।
हरि हर ब्रह्म सकल तिहिं ध्यावै, निर्ज अस कृपातिहि पावै ॥
ध्येयरूप ध्यता ह्वै जबही, सिद्ध उपासन लखिये तबही।
असउपासना हरि अरु हरकी, नारीमूर्ति धरी तजि नरकी ॥६७॥

॥ दोहा ॥ ×निजनिज

अमृत मथनप्रसंगमैं, हरि मोहिनी स्वरूप।
अर्ध अङ्ग सिवको लसै, देवीरूप अनूप ॥ ६८ ॥

॥ चौपाई ॥

भक्ति भगवती के हर हरिं हैं, इन सम कौन उपासन करी हैं।
तदपि महामाया जो ध्यावै, तुरत सकल पुरुषारथ पावै ॥ ६९ ॥
नहिं साधन जगमैं अस औरा, उपजै भोग मोक्ष इकठौरा।
भक्त भगवतिको जो जगमैं, भोगे भोग न आवत भगमैं ॥ ७० ॥
सिवकृत तंत्ररीति यह गाई, भक्त भगवती अति सुखदाई।
पञ्चमकार न तजिये कबहू, जिनहि सनातन सेवत सबहू ॥७१॥
कृष्णदेव बलदेव सुज्ञानी, प्रथमा पिवत सदा ज्यूं पानी।
और प्रधान पुरातन जेते, सेवन सकल मकारहि तेते ॥ ७२ ॥
तिन सेवनकी जो विधि सारी, सिव निजमुख भाखी उपकारी।
सिवको वचन धरै जो मनमैं, लहै सुभोग मोक्ष इक तनमैं ॥७३॥
ग्रन्थ भागवत व्यास बनायो, उपपुरान काली समुझायो।
भक्ति भगवती की इक गाई, पूजा विधि सगरी समुझाई ॥ ७४ ॥
ध्याता सकल भगवती के हैं, हरिहर सूर गनेश जिते हैं।
सकल पिये प्रथमा मतिवारे, पूजत सक्ति मग्न मन सारे ॥ ७५ ॥
जगजननी जागै इक देवी, परमानन्द लहै तिहि सेवी।
सूर्यभक्त भगवतीको यह सुनि, क्रोधसहित बोल्यो इकमुनि पुनि ॥
सुने राजन बानी इक मोरी, भाखूं झूठ न सपथ करोरी।
अतिपापिष्ठ नीच मत याको, श्रवन स्नेह सुन्यो तैं जाको ॥ ७७ ॥
औगुन जिते बखानत जगमैं, ते गिनियत गुन गन या भगमैं।
मद्य मलीनहि तीरथ राखत, सुद्ध नाम आमिषको आखत ॥७८॥
कहत और यूं सब विपरीता, संभुतंत्र सेवी मति रीता।
दच्छिन संप्रदाय जो दूजी, यद्यपि श्रेठ अनेक न पूजी ॥ ७९ ॥
तथापि बिन भानु सब अंधे, इन सबके मन जिनमै बंधे।
करत भानु सगरो उजियारो, ताबिन होत तुरत अंधियारो ॥८०॥

और प्रकाशक जगमैं जे हैं, अंस सवैं सूरजकेतेहैं।
भानु समान कौन हितकारी, भ्रमत आप परहित मतिधारी॥
काल अधीन होत सब कारज, ताहि त्रिविध भाखत आचारज।
वर्त्तमान भावी अरु भूता, सूरज क्रिया करत यह सूता॥ ८२॥
या विधि सकल भानुतैं उपजै, भस्म होइ सब जब वह कुपिजै।
भानुरूप द्वैभांति पिछानहु, निराकार साकारहि जानहु॥ ८३॥
निराकार प्रकाश जु कहिये, नामरूपमें व्यापक लहिये।
अधिष्ठान सबको सो एका, जगत विवर्त व्है जिहि अविवेका॥
"अहं भानु" अस वृत्ति उदै जब।
तामैं प्रगटि विनासत तम सब॥ ८५॥
सुनि साकाररूप यह ताको, होय चांदिना दिनमैं जाको।
ताके अंस और बहुतेरे, चन्द तारका दीप घनेरे॥ ८६॥
यातैं द्वैविधभानु बतायो, ज्ञेय ध्येयको भेद जनायो।
वेद सकल याहीकूं भाखत, रूप प्रकाश सत्य तिहिं आखत॥८७॥
जामैं लेस न तमको कबही।
लखि तिहि जग जन जागत सबही॥ ८८॥
कबहु न सोवै सो यूं जागै, ध्यान करत ताको तम भागै।
औरहि जागत भाखत सगरे, राजन जानि झूठ ते झगरे॥८९॥
एसै पांच उपासक बोले, निजगुण अवगुण परके खोले।
पंडित और अनेक जु आये, भिन्न भिन्न निज मत समुझाये॥
बचन विरुद्ध सुने जब राजा, यह संसे उपज्यो तिहि ताजा।
इनमैं कौन सत्य बुध भाखत, युक्ति प्रमान सकल सम आखत॥
संसे सोक दुखित यूं जियमैं, को उपास्य यह लख्यो न हियमैं।
चिन्ता हृदय हुई यह जाकूं, निजसंदेह सुनाऊं काकूं॥ ९२॥
सास्त्रनिपुनपंडित जग जेते, सुने विरुद्ध बकत यह तेते।
यूं चिन्तत बहुकाल भयो जब, तर्कदृष्टि तिहि आय मिल्यो तब॥

॥ दोहा ॥

मिले परस्पर ते उभै, पुत्र पिता जिहि रीति ।
करि प्रनाम आसिष दुहुँ,आसन लहे सप्रीति ॥ ९४ ॥
निजपितु चिंतासहित लखि, सुत बोल्यो यह बात ।
को चिंता चित रावरे, मुख प्रसन्न नहि तात ॥ ९५ ॥

॥ चौपाई ॥

सुभसंतति सुतकी सुनि बानी, तिहि भाखा निज सकल कहानी ।
चित चिंताको हेतु सुनायो, को उपास्य यह तत्व न पायो ॥ ९६ ॥
तर्कदृष्टिसुनि पितु के बैना, बोल्यो सुभसन्ततिसुखदैना ।
कारन रूप उपास्य पिछानहु, ताके नाम अनन्तहि जानहु ॥ ९७ ॥
कारजरूप तुच्छ लखि तजिये, यह सिद्धांत वेदको भजिये ।
रचे व्यास इतिहास पुराना, तिनमैं यही मतो नहिं नना ॥ ९८ ॥
मनमैं मर्म न लखत जु पंडित, करत परस्पर मत ते खंडित ।
नीलकंठ पण्डित बुध नीको, कियो ग्रन्थ भारतको टीको ॥ ९९ ॥
तिन यह प्रथमहि लिख्यो प्रसंगा ।
श्रुति सिद्धान्त कह्यो जो चङ्गा ॥१००॥
सुभसन्तति सुनि सुतके बैना, उपज्यो जियमैं किंचित चैना ।
पुनि तिन प्रश्न कियो निजपूतहि, सास्त्र परस्पर कहत असूतहि ॥
तिनमें सत्य कौन सो कहिये, जाको अर्थ बुद्धि में लहिये ॥१०२॥
तर्कदृष्टि सुनि निजपितु बानी, बोल्यो वचन सु परम प्रमानी ।
उत्तर मीमांसा उपदेसा, वेद बिरुद्ध न जामैं लेसा ॥१०३॥
सास्त्र पंच ते वेद विरुद्धं, यातैं जानहु तिनहि असुद्धं ।
किंचितअंस वेद अनुसारी, लखि बहुग्रहत मंद अधिकारी॥१०४॥

दोहा

तर्क दृष्टि के वचन सुनि, सुभ संतति तिहि तात ।
संसे सोक नस्यो सकल, लह्यो हिये कुसलात ॥१०५॥

कारन ब्रह्मउपासना, करी बहुत चितलाय।
तर्कदृष्टि निज लखि गुरु, राजसमाजचढ़ाय ॥१०६॥
कछू वेदीत्यो कालतब, तजिराजा निजप्रान।
ब्रह्मलोकमैं सो गयो, मुनिजहँ जात सध्यान ॥१०७॥
राजकाज सब तब कियो, तर्कदृष्टि हुसियार।
लग्यो न रंचक रंग तिहि, लख्यो ब्रह्म निरधार ॥१०८॥
अंत भयो प्रारब्ध को, पायो निश्चल गेह।
आतम परमातम मिल्यो, देह खेंह तैं छेह ॥१०९॥
यह विचारसागर कियो, जामैं रत्न अनेक।
गोप्य वेदसिद्धांततैं, प्रगट लहत सविवेक ॥१०१॥
सांख्य न्यायमैं श्रम कियो, पढ़िव्यकरण असेप।
पढ़ैं ग्रंथ अद्वैतके, रह्यो न एकौ शेष ॥१११॥
कठिन जु और निबध हैं, जिनमैं मतके भेद।
श्रमतैं अवगाहन किये, निश्चलदास सवेद ॥११२॥
तिन यह भाषाग्रंथ किय, रंच न उपजी लाज।
तामैं यह इक हेतु है, दयाधर्म सिरताज ॥११३॥
बिन ब्याकरन न पढ़िसकै ग्रंथ संस्कृत मंद।
पढ़ै याहि अनयासही, लहै सु परमानंद ॥११४॥
दिल्लीतैं पश्चिम दिशा, कोस अठारह गाम।
तामे यह पूरो भयो, किहडौली तिहिनाम ॥११५॥
ज्ञानी मुक्तिविदेहमैं, जोसौं होय अभेद।
दादू आदू रूप सो, जाहि बखानत वेद ॥११६॥
नामरूप व्यभिचारिमैं, अनुगत एक अनूप।
दादूपदको लच्छ्य है, अस्ति भाति प्रियरूप ११७॥

समाप्त

महावाक्य कीर्तन

(श्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज चित्रकूट)

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्

नहीं बुद्धि मन भी नहीं चित्त हूँ मैं;
सदा एक रस हूँ, मैं साक्षी शिवोऽहम् ॥ १ ॥

न मैं ज्ञान इन्द्री, नहीं कर्म इन्द्री;
नहीं प्राण संज्ञा हूं, द्रष्टा शिवोऽहम् ॥ २ ॥

मैं तन भी नहीं हूं, न तन ही है मेरा;
नहीं सप्त धातू हूं, अविचल शिवोऽहम् ॥ ३ ॥

न मैं पञ्च वायु, नहीं पञ्च कोश;
नहीं भूत पांचों, सनातन शिवोऽहम् ॥ ४ ॥

है मुझमें नहीं लोभ, मोहादि कुछ भी;
सदा द्वेष संगो से न्यारा शिवोऽहम् ॥ ५ ॥

नहीं लेश भी पुण्य पापों का मुझ में,
अजन्मा अकर्ता अभोक्ता शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

नहीं सुख दुःखों का आवेश मुझ में;
नहीं वर्ण आश्रम का बन्धन शिवोऽहम् ॥ ७ ॥

न माता पिता बन्धु कोई है मेरा;
सभी भूत प्राणी का कारण शिवोऽहम् ॥ ८ ॥

सभी ठौर व्यापक मैं रहता निरन्तर;
सभी में सभी से निराला शिवोऽहम् ॥ ९ ॥

सदा शुद्ध हूं मैं, सदा मुक्त हूँ मैं;
निराकार मैं निर्विकारी शिवोऽहम् ॥१०॥

नित्योऽहम् परोऽहम् शिवः केवलोऽहन्;
यह सद्गुरुकी वाणी, सदा ही शिवोऽहम् ॥११॥

शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् शिवोऽहम्

नारायणदास राजूमल बनारस ।

देशमित्र प्रेस, नीचीबाग, वाराणसी ।

पृष्ठ

अन्तराय रहित का नाम अव्यवहित है ४८
अन्तराय सहित का नाम व्यवहित है।

विषयाकार वृत्ति मैं आरूढ़ चेतन को प्रमाता कहते है पृष्ठार्ध
अहं अहं इस विज्ञान धारा को आलय विज्ञान धारा कहते है औ उसको ही बुद्धि भी कहते है। यह घर है यह शरीर है ऐसी विज्ञान धारा को प्रवृत्ति विज्ञान धारा कहते है वही मन है १४६

प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का है केवल इन्द्रिय संबन्ध से जो ज्ञान होवे सो अभिज्ञा प्रत्यक्ष कहते है जैसे यह (हस्ती है) यह ज्ञान अभिज्ञा प्रत्यक्ष है और पूर्व ज्ञान के संस्कारन से और इन्द्रिय संबन्ध से ज्ञान होये वह प्रत्याभिज्ञा प्रत्यक्ष है जैसे पूर्व देखे हस्ती का (सो हस्ती यह है) ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष प्रत्याभिज्ञा प्रत्यक्ष है। तरंग ६५-२३२ २०१-१८

किसी एक को जगत् का कर्त्ता मानने मे कोई युक्ति नही तो युक्ति के अभाव का नाम बिनिगमना विरह कहते हैं। पिछले के अभाव का नाम प्रागलोप है।

उपलक्षण

जो वस्तु जिसके एक देशमे होय कदाचित् होय और व्यावर्तक होय सो उपलक्षण कहिये है जैसे काक वाला देवदत्त का घर है या वाक्य मे देवदत्त के घर का काक उपलक्ष है का है ते घर के एक देश मे काक होवै है और कदाचित होवै है सर्वदा नही और अन्य घर से देवदत्त के घर का व्यावर्तक है तैसे कारण ब्रह्म है ताके एक देश मे मूर्ति होवै है और कदाचित होवै है और चतुर्भुजादिक मूर्ति कारण ब्रह्म विषे होवै है

साक्षी ब्रह्मस्वरूप इक, नहीं भेद को गन्ध ।
रागद्वेष मति के धरम, तामैं मानत अन्ध ॥

अन्य मे नही याते व्यावर्तक है होने से उपलक्षण है उपलक्षण का यह प्रयोजन होवै है। विशेष्य वस्तु के स्वरूप का ज्ञान होवै जैसे काक से देवदत्त के घर का ज्ञान होवै अन्य प्रयोजन काक ते नही तैसे चतुर्भुजादिक आकार ते निराकार कारण ब्रह्म का ज्ञान उपासना के निमित्त मूर्ति प्रतिपादन का प्रयोजन है अन्य नही॥